महावीर श्री चित्र-शतक

(मुद्रित रेखाकृतियाँ)

विषय वस्तु —श्रीवीर प्रभु का जीवन-दर्शन—
हीयमान से वर्द्धमान पर्यन्त।

•

सम्पादक एवं लेखक—
पं० श्री कमल कुमार जी शास्त्री "कुमुद"
कवि श्री फूलचन्द जी "पुष्पेन्दु"
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

•

परामर्श दातृ-मंडल—
श्री ब्र० माणिकचन्द जी चवरे कारंजा
पं श्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी जबलपुर म० प्र०
पं श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री ब्यावर (राजस्थान)
श्री डा० देवरचन्द्र जैन व्याख्याता भावनगर (गुजरात)
पं० श्री नेमिचन्द्र जी जैन प्राचार्य गुरुकुल खुरई (सागर) म० प्र०

•

चित्रशिल्पी—
श्री रामप्रसाद जी देहली
श्री दुर्गादीन जी बागी एडवोकेट } खुरई (सागर) म० प्र०
श्री रमेश सोनी मधुकर

•

प्रकाशक—
भीकमसेन रतनलाल जैन
१२८६ वकीलपुरा देहली ११०००६

•

मुद्रा मूल्य दस रुपया युग मूल्य पच्चीस सौ वर्ष
 प्र० सं० २२००

•

मुद्रक जे पी प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-३२

भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष के संदर्भ

में

संसार

के

समस्त अहिंसा-अनुयायियों

को

सादर समर्पित

अहोभाग्य

वह तात धन्य—

वह मात धन्य—

वह क्षेत्र धन्य—

कुल गोत्र धन्य।

वह घडी धन्य—

वह धर्म धन्य—

वह तन मन—

लोचन श्रोत्र धन्य।

जो सन्निमित्त—

बनकर खुद को—

युग-युग तक—

अमर बनाते हैं।

वे वर्द्धमान से—

अनु प्राणित—

उनकी ही—

गाथा गाते हैं॥

वीरं शरणं पव्वज्जामि

सन्मति शरणं पव्वज्जामि

धम्मं शरणं पव्वज्जामि

जिन्होंने

महामोह पर विजय प्राप्त की

उन महावीर प्रभु की शरण को प्राप्त होता हूँ।

जिन्होंने

कैवल्य रश्मियों से

सारा लोक ज्ञानालोक से भर दिया

उन सन्मति श्री की शरण को प्राप्त होता हूँ।

अर्हत्केवली

भगवान वर्द्धमान द्वारा प्ररूपित

वीतराग धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

गणधर इन्द्रों ने भी जिनकी महिमा नहीं सर्वथा आँकी।
जिनकी स्तुति करते-करते शक्ति थकी जिनवाणी माँ की॥
मैं अल्पज्ञ भला क्या जानूँ ? महावीर सर्वज्ञ जानते—
कैसे उनके जीवन दर्शन की खींची है मैंने झाँकी॥

मगल स्तुति

रचयित्री विदुषीरत्न पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत सबको जान लिया॥
रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका सस्पर्श करें।
अक्षय सुख पथ के वे नेता, जग मे मगल सदा करें॥१॥

चन्द्र किरण चन्दन गगाजल से भी शीतल वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने मे है कुशलानी॥
सप्तभग युत स्याद्वाद मय, गगा जगत पवित्र करे।
सबकी पाप धूली को धोकर, जग मे मंगल नित्य करे॥२॥

विषय वासना रहित निरवर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवो को अभय दान दे निर्भय पद को प्राप्त किया।
भव समुद्र मे पतित जनो को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मगल दाता॥३॥

अनत भव के अगणित दुख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर, शिव सुख मे ले जाकर जो शीघ्र धरे॥
धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पति देवे।
उसके आश्रय से सब जन को भव-भव मे मगल होवे॥४॥

श्री गुरु का उपदेश श्रवण कर नित्य हृदय मे धारें हम।
क्रोध मान मायादिक तज कर विद्या का फल पावे हम॥
सबसे मैत्री, दया, क्षमा हो सबसे वत्सल भाव रहे।
सम्यक् 'ज्ञानमती' प्रगटित हो सकल अमगल दूर रहे॥५॥

महामंगलमय महावीर

सिद्धिप्रदं महावीरं, संसारार्णवपारगं ।
सन्मतिं शिरसावन्दे, नित्यं सन्मतिसिद्धये ॥

× × ×

वीरः सर्व सुरासुरेन्द्र महितो वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्तया नमः ॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्त मतुलं वीरस्य वीरं तपो ।
वीरे श्री द्युतिकांतिकीर्ति धृतयो हे वीर ! भद्रंत्वयि ॥

× × ×

नमोस्तु तुमको सकल लोक के चूड़ामणि हे परमात्मन् !
नमोस्तु तुमको वीर! धीर! महावीर प्रभो! त्रिशलानंदन!
नमस्तु तुमको जिनपुंगव! जिनवर्द्धमान! हे प्रभु अतिवीर!
नमस्तु तुमको हे सन्मति प्रभु! मुझको सन्मति दो महावीर॥

चित्र-शतक के प्रकाशक
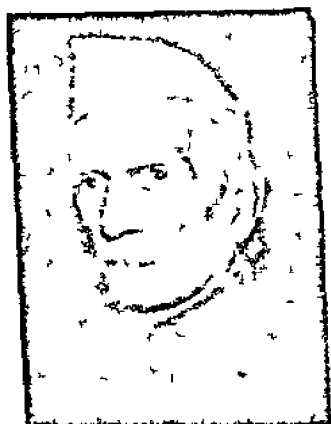
उदारमना—

बाबू रतनलाल जी जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली-११०००६

जैन साहित्य प्रकाशन की तीव्र अभिरुचि रखने वाले उदारमना वयोवृद्ध बाबू श्री रतनलाल जी जैन कालका वाले सम्प्रति १२८६ वकीलपुरा देहली के निवासी हैं। लगभग ४० वर्षों से आप मुझ से सुपरिचित है और मेरी लेखनी पर इतने अधिक विमुग्ध है कि मेरे विशाल काव्य ग्रन्थों का प्रकाशन आपने निस्वार्थ भाव से किया है तथा भविष्य में करने को अत्यन्त लालायित है।

वज्राङ्गबली हनुमान चरित्र, भक्तामर महाकाव्य, महावीर

सन्देश, महावीर श्री चित्र-शतक तथा प्रकाश्य मान सचित्र भक्ताभर महाकाव्य (पृष्ठ लगभग ७५०) आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

श्री जिनवाणी सरस्वती मंदिर के इस धर्म-प्राण पुजारी में समर्पण का गहराभाव है। सर्विस मात्र ही आपकी आजीविका का एक मात्र साधन होने पर भी आप उन्मुक्त हृदय से अपने न्यायोपार्जित धन का सही सदुपयोग श्री जिनवाणी माता के प्रसार-प्रचार में ही सदा-सर्वदा करते रहते हैं परन्तु इस साहित्य-सेवा को आप आय का साधन नहीं वनाते। प्रस्तुत ग्रन्थ "महावीर श्री चित्र शतक" को समस्त जैन मन्दिरों शिक्षा संस्थाओं एवं जैन पुस्तकालयों को विना मूल्य देने का उनका निर्णय दूसरों के लिए एक उदाहरण है। आपके वहिरंग व्यक्तित्व में जितना सादापन है, उतनी ही सरलता एवं गंभीरता आपके अंतरंग में है। आत्मन्ह्विता आपका विशिष्ट गुण है। खादी का सादा लिवास आपकी देशभक्ति को प्रकट करता है।

कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"
सम्पादक महावीर श्री चित्र-शतक

गौरवं प्राप्यते दानात् न तु वित्तस्य संचयात्।
उच्चैरिस्थिति पयोदानां, पयोधीनामधः स्थिति॥

ऊँचा सदा उठा है, छोड़ने वाला।
नीचे सदा गिरा है, जोड़ने वाला॥

देखलो वादल गगन का वन गया साथी।
पर समुन्दर सर जमीं पर फोड़ने वाला॥

चित्र-शतक के सम्पादक

प श्री कमलकुमारजी शास्त्री 'कुमुद'

व्यवस्थापक
श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

आप ही हैं जैन जगत के बहुचर्चित सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् एव कलाकार, जिनकी सतत साधना ने स्थानीय प्रकाशन सस्था श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय-सदन की छत्रच्छाया मे अब तक अर्द्ध-शतक ग्रथो का लेखन एव सम्पादन करके जैन वाड्मय का भडार भरा है। ६५ वर्षीय प्रौढ होने पर भी जिनमे युवाओ सदृश्य उन्मेष, कर्मठता एव जीवन्त क्रान्ति विद्यमान है।

चित्र-शतक के सम्पादक

कवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'
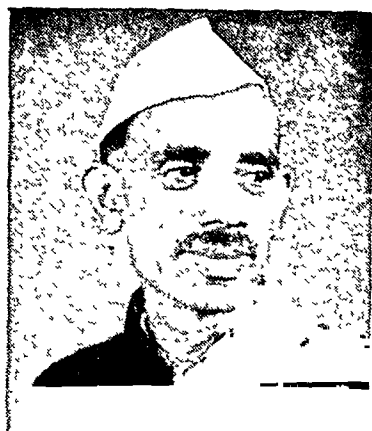
अध्यापक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म० प्र०

जिनके व्यक्तित्व में गौणता की मुख्यता है। सामान्य की विशेषता है, व्याकरण में जिसे भाव वाचक संज्ञा, निज वाचक सर्वनाम और अकर्मक क्रिया कहते हैं वे हैं श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'। श्री पं० कमलकुमर शास्त्री 'कुमुद' के अनन्य सहयोगी। स्व० व्रती श्री वाल चन्द जी के ४६ वर्षीय वरिष्ठ पुत्र।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी
श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट "बागी"

प्रख्यात चित्रकार एवं सुमधुर गीतकार
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

श्री बागी जी खुरई के विख्यात एडवोकेट हैं। चित्रकला आप पर तन-मन से मुग्ध है और हाथ धोकर इनके पीछे पड़ी है परन्तु आप हैं कि उसे तलाक दिये फिर रहे हैं। बागी जो ठहरे!

आज कल आप कविताओं का बाग लगाते हैं और बगावत की पैरवी करते हैं।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी

श्री रमेश सोनी 'मधुकर'
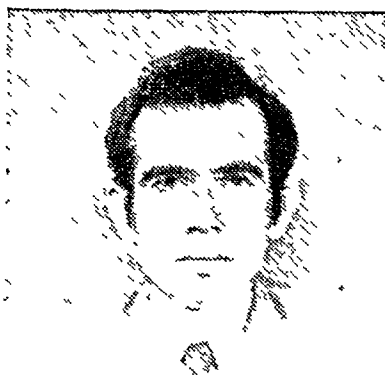
सिद्धहस्त चित्रकार एवं सुमधुर गीतकार
खुरई (सागर) म० प्र०

श्री मधुकर जी निरन्तर अपनी तूलिका एवं लेखनी द्वारा जनवाणी माता का शृंगार करने में सदा दत्तचित्त रहा करते ।

आकाशवाणी केन्द्रों द्वारा आप की स्वरचित 'ज्योतिर्मय हावीर' (गीत-काव्य) रचना प्रसारित होने योग्य है ।

चित्र-शतक का परामर्श दातृमंडल

ब्रह्मचारी श्री मानकचद जी चवरे
न्यायतीर्थ, कारजा (महाराष्ट्र)

भारतीय जैन गुरुकुलो के प्रणेता
१०८ मुनि श्री समन्तभद्र जी
महाराज के
अनन्य शिष्य, एव गुरुकुलो के
अधिष्ठाता

प० श्री जगमोहन लाल जी शास्त्री
कटनी (जबलपुर) म० प्र०

ैन सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याता
अनुभवी एव चरित्रनिष्ठ
उच्चकोटि के प्रखर विद्वान्

श्री डा० शेखरचंद जी जैन
एम.ए.पी.एच.डी. साहित्यरत्न

आर्टस् एण्ड कामर्स कालेज
भावनगर (गुजरात) में
हिन्दी के विभागाध्यक्ष,
अहिन्दी भाषी प्रदेश में
हिन्दी के प्रचारक एवं
उद्भट् विद्वान

पं श्री नेमिचन्द जी जैन शास्त्री
एम.ए (द्वय) बी-एड साहित्याचार्य

प्राचार्य श्री पार्श्वनाथ दि० जैन
गुरुकुल हायर सेकेण्ड्री स्कूल
खुरई (जिला सागर) म० प्र०
पी० एच० डी० के शोधात्मक एवं
कर्मठ विद्वान

प श्री हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री
ब्यावर (राजस्थान)
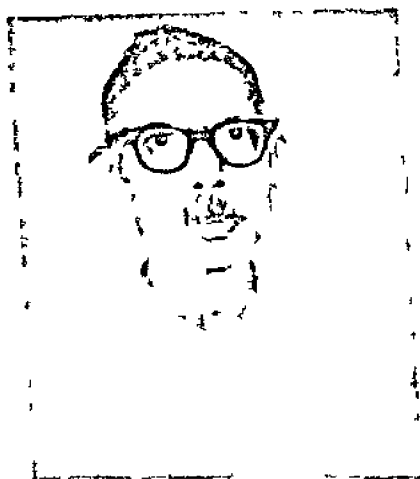
जैन वाङ्मय एवं समाज के अनन्य सेवक
षट्खण्डागम के सुयोग्य सम्पादक

आभार

उपरोक्त परामर्शदातृ विद्वान् मंडली ने प्रस्तुत ग्रन्थ निर्माण के पूर्व एवं पश्चात् समय-समय पर उचित निर्देशन एवं संशोधन प्रदान कर इसे निर्दोष बनाने मे जो योग-दान दिया है उसके प्रति श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय सदन (संस्था) अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

—व्यवस्थापक

पृष्ठ निर्देशन (अ)

—०—

निवेदन के पृष्ठ

मानवता का चरमोत्कर्ष, पौरुष की सुष्ठु पराकाष्ठा, व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा चैतन्य आत्मा के स्वरूप का अन्तिम निखार जव अलौकिकता के सूक्ष्मतम केन्द्र-विन्दु पर पहुँच कर परमात्मा का रूप धारण कर लेता है तव तीनों लोकों के जीव मात्र उस कृतकृत्य सत्व के पादार-विन्दों में आत्म समर्पण करने के लिये लालायित हो उठते हैं। तथा कथित दिव्य ऐश्वर्य—वैभव—विभूतियाँ ही नहीं, वल्कि उत्कृष्ट से उत्कृष्ट माहात्म्य भी हतप्रभ होकर ऐसे चिच्चमत्कारमयी समयसार से आलोक की याचना करता है। केवल आत्मा और परमात्मा की सुदृढ़ भूमिका पर ही आधारित यह सम्पूर्ण जैन-शासन (आत्मधर्म) रत्नत्रय मण्डित इन चैतन्य-सर्वज्ञ-कर्मण्य वीतरागी महाश्रमणों को 'अरिहंत' नाम की महा मंगलमयी संज्ञा से सम्वोधित करके अपने को धन्य मानता है। परम पूज्य पंच परमेष्ठी के आदि पद पर प्रतिष्ठित ये अनादि सनातन पुरुष प्राणिमात्र के कल्याण के लिये अहिंसा, प्रेम, विश्व—वन्धुत्व, सर्वोदय और वीतरागता परक व्यावहारिक उपदेश तथा पर से सर्वथा निरपेक्ष स्वाभाविक स्वावलम्वन परक निश्चय धर्म का उपदेश स्वयं "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य" के ज्वलंत और जीवित आदर्श प्रतीक वनकर देते है। नहीं-नहीं, भव्य जीवों के परम सौभाग्य से ही इन युगात्माओं के द्वारा सर्वाङ्गमुखी, निरक्षरी, अनेकान्ता वाग्गंगा दिव्यध्वनि के कलकल निनाद पूर्वक प्रवाहित होती रहती है, जिसमें विवेकी जन-हंस अद्यापि किलोलें करते हुए स्वपर कल्याणकारी मुक्ति पंथ पर गमन करते हैं।

समवशरणादिक लौकिक विभूतियों से सम्पन्न एव अनन्त चतुष्टयादिक अनंत अलौकिक गुणों से मंडित तीर्थंकर नाम कर्म की सर्वोत्कृष्ट पुण्यतम प्रकृति की यह साकार मानवता जिन अरिहंत विशेषों ने अपने अपूर्व पुरुषार्थ से अर्जित की है— वे युग पुरुष कहलाते हैं। जो यथावस्थित चराचर लोक के मात्र वीतराग ज्ञाता दृष्टा होकर आत्मानुशासित जैन शासन की अनादि निधन प्रवहमान युगान्तरगामी स्रोतपुरी के रूप में सदा-सर्वदा वंदनीय रहते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान वर्द्धमान-महावीर इस कल्प-काल के एक ऐसे ही युग पुरुष महामानव थे जिनका तीर्थङ्करीय शासन चक्र अब भी भरत क्षेत्र में अढ़ाई हजार वर्ष से निरन्तर प्रवर्तमान है। इस पंचम कलिकाल के जीवों के लिये उनकी निश्चय व्यवहार परक मुख्य गौण अनेकान्त वाणी जितनी आवश्यक और हिता-वह आज है, उतनी कदाचित ही कभी रही है। महाश्रमण महावीर स्वामी आज भले ही अरिहंत अवस्था में साकार रूप से होकर हमारे नयन पथगामी आदर्श न हों (निराकार-निरंजन सिद्धत्व अवस्था में विराजमान हों) तो भी उनका वाङ्मय शरीर परम पूज्य गणधराचार्यों के मूल ग्रन्थों में ग्रथित किया हुआ अब भी सुरक्षित है। आज आवश्यकता है उनके भले प्रकार पारायण की।

सर्वज्ञ भगवान महावीर की वह श्री वाग्मयी दिव्य ध्वनि उन पूज्यपाद गणधरों ने यद्यपि द्वादशाङ्ग श्रुत में गूंथी थी परन्तु काल-प्रवाह ने उसकी व्युच्छित्ती करके हमें विविध शास्त्राभासों के गहन कानन में अकेला छोड़ दिया है। फिर भी आचार्य कुंद-कुंदादि की असीम अनुकम्पा से वीर-शासन के अक्षुण्ण मूल-सूत्र हमारे हाथ में हैं और प्रशस्त मोक्ष मार्ग हमें अभी भी सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज भौतिकता के घने काले बादलों ने आध्यात्मिकता के सूर्य को ढंक कर समस्त भूमण्डल को नास्तिकता के वातावरण से भर दिया है। अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, असत् अधर्म का दुःशासन धर्म की सहिष्णुछाती पर निरन्तर मूग दल रहा है। ऐसे ही युग में २५०० सौ वर्ष बाद यदि परि निर्वाणोत्सव विश्व व्यापी धूमधाम लेकर आ ही रहा है तो हर अन्तरात्मा की आवाज है कि यह वर्ष आध्यात्मिक सत्क्रान्ति की ऐसी तूफानी लहरें छोड़े कि वर्तमान और भावी पीढ़ी का युगों पुराना पाप-पंक एक ही बार में प्रक्षालित हो जावे।

आज शासन प्रभावना की अपेक्षा युगीन क्रान्ति का महत्व अधिक है। हमें स्मरण है कि विगत दिनों स्वतन्त्र भारत ने केन्द्रीय शासन के संबल पर बुद्ध महा—परिनिर्वाणोत्सव भी अन्तर्राष्ट्रीय धूमधाम से सम्पन्न किया था। उसके परिणाम की धूमिल स्मृति भी आज निःशेष हो गई है। भय है कि कहीं यही हाल पच्चीस सौवें वीर परि निर्वाणोत्सव का न हो। यद्यपि संघ एवं राज्य सरकारें और जैन समाज के विविध सम्प्रदाय विभिन्न स्मारकीय परियोजनाओं द्वारा भगवान महावीर के अमर गीत गा रहे हैं, परन्तु उन गीतों में अपने प्राण घोलने वालों का आज भी अभाव है। इस वीर परि निर्वाणोत्सव की सार्थकता तो आध्यात्मिक युगीन सत्क्रान्ति से ही संभव है।

विविध बृहत् योजनाओं की इस भूमिका में साहित्य प्रकाशन योजनाएँ भी बड़े पैमाने पर अपना योग दान दे रही हैं। यह एक ऐसा सरल रचनात्मक कार्य है जिसकी इति श्री लेखन और प्रकाशन पर ही सुगमता से हो जाती है। आगे वाचन-पठन-मनन उनका होता है या नहीं इसकी कोई चिन्ता की ही नहीं जाती और न तद्विपयक योजनाएँ भी बनाई जातीं। असली रचनात्मक कार्य तो जीवन-निर्माण है—इसे कौन समझावे ?

आज का जन-जीवन अध्यवसाय के लिये इतना व्यस्त और व्यग्र एव अध्यवसायी सा दिखाई दे रहा है कि स्वाध्याय की तो बात दूर, ग्रन्थो के पन्ने पलटना भी उसे मँहगा पडता है। आकर्षणो पर मुग्ध सौन्दर्य पिपासु नयनो को तो चित्रकला ही ज्ञान चेतना की जागृति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम हो सकती है। शिक्षित और अशिक्षित, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी दोनो के लिये ही चित्र-लिपि एक ऐसा मौन मुखर काव्य है जो केवल दर्शन मात्र से ही पूरा का पूरा पढ लिया जाता है। मूर्ति दर्शन क्या है ? सहज ही शीघ्रता से पढा जाने वाला वह दर्शन काव्य जो चित्र लिपि मे लिखा गया है। यही कारण है कि जगत मे चित्रो और मूर्तियो की सार्वभौमिकता अपेक्षा कृत अधिक प्रशस्त है।

इसी तथ्य को लक्ष्य मे रखकर हमने सर्व साधारण को भगवान महावीर के आमूल चूल जीवन वृत्त से परिचित कराने के लिये उनका यह चित्रमय इतिहास अकित करने का दुस्साहस किया है। हो सकता है इसके पूर्व भी अनेको प्रयास हुए हो— समानान्तर स्तर पर अभी हो रहे हो, परन्तु अपनी मौलिकता के प्रमाण स्वरूप इतना कहना ही पर्याप्त है कि हमने इसमे उन सभी चित्रो का सकलन किया है जो भगवान महावीर स्वामी की अतीत कालीन पर्यायो से सम्बद्ध है। शास्त्राधार पूर्वक बनाये गये ये कल्पना चित्र इतिहास की बेजोड झाँकियाँ है। अन्तिम भव सम्बन्धी महावीर श्री के जीवन चित्र अवश्य ही विपुलता से प्राप्त होते है, उनकी श्रृखला मे भी हमने यथा सभव वृद्धि करने का प्रयास किया है। ध्वज प्रतीकादिक के वे सभी चित्र जो अखिल भारतीय निर्वाणोत्सव महा समिति ने निर्धारित एव प्रचारित किये हैं इसमे समाविष्ट करने का प्रयत्न भी हमने किया है। चित्रो का भावाकन इतना सुस्पष्ट हुआ है कि उनकी मूक मौन मुद्रा का भग करने का साहस ही नही

होता, परन्तु इस मुखर युग में मौन का मूल्य ही क्या ? इस-लिये चित्रों को वाणी देने के लिये हमने तत्संबंधी संक्षिप्त पद्य रचना द्वारा भी उन्हें अलंकृत किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'महावीर श्री चित्र-शतक' में दो खण्ड हैं। एक तो चित्र काव्य खण्ड और दूसरा पद्य काव्य खण्ड। इतने में ही उनके समूचे जीवन दर्शन के गूँथने का प्रयास किया गया है।

यह ग्रन्थ चित्र संकलन अथवा अलबम मात्र नहीं है वल्कि पुराण एवं इतिहास की कोटि में रखा जाने योग्य एक स्मृति ग्रन्थ है। पद्य क्या हैं ? जैन सिद्धान्त के सूत्र हैं जिनमें घटना क्रम और कथानकों के सुरभित सुमन पिरोये गये हैं।

ग्रन्थ के पन्ने पलटते हुये ऐसा प्रतीत होता है जैसे छाया चित्र पटल पर महावीर श्री की फिल्म रील क्रम वद्ध रूप से चल रही हो। संक्षिप्त और ललित पद्य संगीत का कार्य करते हुये कथानक को रोचक वनाते जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण कार्य कितना परिश्रम साध्य, व्यय साध्य और समय साध्य रहा इसकी कटुक अनुभूति सिवाय भुक्तभोगी सम्पादक के और किसी को नहीं हो सकती। अनु-भूति तो अवश्य कटुक थी परन्तु उसका परिपाक अन्तरात्मा में अपूर्व माधुर्य रस घोल रहा था। उसी माधुर्य ने केवल लक्ष्य विन्दु पर ही दृष्टि रखी। कंटकाकीर्ण मार्ग पर नहीं।

एक वर्ष पूर्व इस चित्र शतक की कल्पना भी मेरे मस्तिष्क में नहीं थी। वह तो दिल्ली निवासी श्री पन्नालाल जी जैन आर्चिटेक्ट महोदय का सवल निमित्त था जो निरन्तर प्रेरणा की इकाई वनकर इस पुनीत निर्माण कार्य को सम्पन्न कराने में सदैव स्मरणीय रहेगा। उनके दैनिक पत्र व्यवहारों ने मेरी शिथिलताओं के विरुद्ध अंकुश का बृहत्तर काम किया। वस्तुतः इन्हीं महावत श्री के निर्देशन में 'महावीर श्री चित्र शतक' का

यह गुरुतर गजरथ सञ्चालित किया गया है, अत उनके प्रति मैं श्रद्धा पूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

कृतज्ञता के द्वितीय सुपात्र आदरणीय श्रीमान् बाबू रतन लाल जी जैन वकीलपुरा देहली हैं जो हमारे प्रकाशनों मे मुक्त-हस्त मे आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हे प्रकाश मे लाने का पुण्यार्जन करते ही रहते है। इस ग्रन्थ के एक खण्ड के प्रकाशन का भार अपने कधो पर लेकर हमारे ऊपर भारी अनुकम्पा की है एतदर्थ हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

कृतज्ञता के तृतीय एव चतुर्थ पात्र हैं श्री बाबू दुर्गादीन जी श्री वास्तव एडवोकेट तथा श्री रमेश सोनी 'मधुकर'। दोनो महानुभाव सुमधुर गीतकार एव सिद्ध हस्त चित्रकार हैं। स्थानीय विद्वानो के निर्देशन मे रहकर उन्होने न जाने कितनी बार इन चित्रो को सवारा सजाया है। चित्र सकलन और चित्र निर्माण मे जमीन आसमान का अन्तर होता है। उभय चित्रकारो के जैनेतर होने से उनके सामने सैद्धान्तिक अबोधता की विकट समस्यायें थी। उन्हे हल करने के लिये भी कम प्रयास नही करने पडे।

हमारे परम स्नेही सहयोगी सम्पादक श्री फूलचद जी पुष्पेन्दु शिक्षक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई ने इस ग्रन्थ के निर्माण कार्य सम्पन्न करने के लिये वस्तुत कुछ उठा नही रक्खा अत उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करके हलका फुलका हो जाना चाहता हूँ।

इस सुअवसर पर मैं श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई के प्राचार्य श्रीमान् नेमिचन्द जी जैन एम० ए० साहित्याचार्य बी० एड० को भी कदापि विस्मरण नही कर सकता जिन्होंने इस ग्रन्थ को सजाने सवारने मे समय-समय पर अपनी बहुमूल्य रायें देकर हमे उपकृत किया है, वा मेरी प्रार्थना पर उन्होने सम्पादकीय वक्तव्य लिखकर मुझे आभारी बनाया है।

यह चित्र शतक कैसा क्या है ? इसकी उचित समीक्षा तो दर्शक और पाठक ही न्याय पूर्ण ढंग से कर सकते हैं। मैं स्वयं क्यों इसकी प्रशंसा करके अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का आरोप सिर पर लूँ। अस्तु—

मेरे जीवन-दीप का निर्वाण भी न जाने किस क्षण हो जाये इस आशंका ने ही मुझे निरन्तर ही शुभोपयोग में प्रवृत्त रखा है।

भगवान् महावीर श्री की २५०० सौवीं वर्ष तिथि पर यह चित्र-शतक उनकी पावन स्मृति को युग युगान्त तक अमर रखे इस महान पवित्र भावना के साथ उन्हीं के पावन चरणों में यह ग्रन्थ समर्पित करते हुये पुलकित हो रहा हूँ। 'इत्यलम्'

खुरई (जिला सागर) म० प्र०
दिनांक ९-८-१९७४

विनयावनत—
कमल कुमार जैन शास्त्री,
"कुमुद"

ग्रन्थ-प्रसग

अनादि निधन सनातनता को काल की सीमा मे कभी भी नही बाधा जा सकता तथापि पुराण और इतिहासो ने सदैव ही किसी एक कल्पित बिन्दु पर स्थित होकर अपने को आदिम इकाई घोषित किया है। आकाश और पृथ्वी का जिस कल्पित रेखा पर सगम का प्रतिभास होता है उसे क्षितिज कहते हैं। पुराणो के आकाश और इतिहास की धरातल का सगम भी एक ऐसा ही कल्पित क्षितिज है जहा से सभ्यता अथवा मानव विकास की कहानी का प्रारभ किया जाता है। उदाहरण के लिए आदिमयुग पर हम विचार करें। आधुनिक इतिहास जिस आदिमयुग की चर्चा करता है उसे वह स्वय नही जानता। पुराण उसे समझाते हैं कि वह आदिमयुग दूसरा नहीं बल्कि इस कल्प काल की कर्मभूमि का प्रारम्भिक युग है जिसके प्रणेता आदिनाथ अर्थात् राजा ऋषभदेव थे। वही से मानव सभ्यता के विकास की क्रमिक कहानी का प्रारम्भ होता है।

अन्तिम मनु (कुलकर) श्री नाभिराय जी के पुरुषार्थी पुत्र युवराज ऋषभदेव ने स्वय कर्मभूमि के प्रारम्भ मे मनुष्यो को असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य की शिक्षा देकर उनका सतत विकास करने का परामर्श दिया। सब से पहिले मानव के द्वारा अपने विचार मौखिक ही व्यक्त किए गये, पर जब विचारो को लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पडी तब कुछ सकेत चिन्ह बनाए गए। सभी ने अपने क्षेत्रो मे अनेको प्रकार के सकेत चिन्ह निर्मित किये और उन्हे आधार मान कर विचारो के लिपिबद्ध करने की परम्परा प्रारम्भ की गई। यही कारण है

कि आज विश्व के कोने-कोने में हजारों भाषाओं और सैकड़ों लिपियां देखने में आ रही हैं।

विचारों के विकास के साथ मानव में एक दूसरे के प्रति प्रेम पूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न हुई। कालान्तर में संसार के सुखों एवं दुखों को देखकर ईश्वर की परिकल्पना को जन्म दिया गया। अवतारवाद की आंधी विश्व में फैली और विविध धर्मों का जन्म हुआ। अनेकों विचारक आये और उन्होंने अपने-अपने विचार व्यक्त कर मानव समुदायों को अपना अनुयायी वनाया। इस प्रकार भले ही प्रथमानुयोग में दृष्टान्तों द्वारा मानवत्व के विकास की कहानी का आदि और अन्त प्रतिपादित किया हो परन्तु द्रव्यानुयोग ने तो आत्मा के विकास की ही कथा अनादि और अनन्त की भाषा में सतत कही है। कोई उसे सुने या नहीं। वह कहानी तो आज भी चल रही है, कल भी चलती रहेगी एवं विगत कल भी चलती रही थी। उसकी अजस्र धारा तीनों काल प्रवहमान है। तो भी आध्यातम की यह कथा मुग्ध सुषुप्त और मूर्च्छित जीवों को शीघ्र सुनाई नहीं देती, वल्कि आध्यात्मिक क्रान्ति के नगाड़े जव उनके कानों पर जोर-जोर से वजते हैं तभी उनकी मोह-निन्द्रा भंग होती है। और वे देखते हैं उस युग-पुरुष को जिसने चैतन्य आत्म जागृति का विगुल फूंक कर उन्हें जगाया है। वस तभी से उनकी आत्मा के विकास की कहानी का प्रारम्भ हो जाता है।

भगवान महावीर स्वामी भी एक ऐसे ही आध्यात्मिक क्रान्ति के अग्रदूत युग-पुरुष थे जिन्होंने ईश्वरवाद, व्यक्तिवाद, स्वार्थ-वाद, कर्मवाद, पाखंडवाद, अवतारवाद की जड़ी भूत रूढ मान्यताओं के विरुद्ध क्रमशः शुद्धात्मवाद, परमात्मवाद, आत्म-वाद, परमार्थवाद और मोक्षवाद, अनेकांतवाद का प्रतिपादन करके प्राणिमात्र के क्षद्रतम अहं को भी सिद्ध जैसे विराट्तम

अह् के पद पर पहुंचने की प्रेरणा दी—ज्ञान दिया। इस भांति सनातनता का आदि मध्य और अन्त सभी कुछ आत्मतत्त्व पर केन्द्रित हो गया। फलस्वरूप प्रत्येक आत्मा ने जब अपने मे झांक कर देखा तो निश्चयत उसे परमात्मा के पुनीत दर्शन हुए।

हम जानते है कि जिस वस्तु का विकास होता है उसका विनाश भी होता है। ज्ञान भी वर्धमान एव हीयमान, अव स्थित एव अनवस्थित होता है। चाहे कारण कुछ भी हो भारतीय सस्कृति का भी यही हाल है। वर्तमान मे पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय आध्यात्मिक सस्कृति का क्रमिक ह्रास होता जा रहा है। मानव की सघटनात्मक प्रवृत्तिया समाप्त हो रही हैं और विघटनकारी प्रवृत्तिया पनप रही हैं। सारा राष्ट्र एक असतुलन की स्थिति से गुजर रहा है। सर्वत्र अशान्ति एव अराजकता की भयकर स्थिति नजर आ रही है। जो मनुष्य थोडा भी समझदार है वह चाहता है कि अब देश मे कोई एक ऐसी व्यवस्था आवे जो शान्ति एव स्थिरता उत्पन्न करे। मैं समझता हू कि भगवान महावीर के उपदेश वर्तमान स्थिति को काबू मे करने के लिए अत्यधिक समर्थ हैं।

"महावीर श्री चित्र-शतक" ग्रथ मे भी भगवान महावीर स्वामी के जन्म जन्मान्तरों के चित्रो के द्वारा द्वारा प्रदर्शित करने का सुप्रयास किया गया है कि आत्मा का क्रमिक विकास किन ऊबड खाबड या उच्चसम परिस्थितियो से गुजर कर हो पाता है। महावीर जिस प्रकार अनेको भवो के आधार पर अपना विकास कर जगत्पूज्यत्व प्राप्त कर सके उसी प्रकार प्रत्येक मानव की अपनी अन्तरग आत्मा ईश्वरत्व सम्पन्न है। अगर विकास हो तो ईश्वर बना जा सकता है।

'महावीर श्री चित्र शतक' के चित्र आत्मा के क्रमिक विकास के साक्षात् प्रमाण हैं। प्रथमानुयोग उन्ह मानव के क्रमिक

विकास की कहानी कहता है। चित्र लिपि में लिखित ये चित्र हमें यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि अगर शाश्वत सुख शान्ति की अभिलाषा है तो अपनी आत्मा का विकास करें। विकास की गति जितनी सशक्त होगी सुख एवं शान्ति उतनी ही निकट होगी।

भगवान महावीर के पच्चीस सौवें परिनिर्वाणोत्सव के अवसर पर हम 'महावीर श्री चित्र-शतक' एक सचित्र ग्रन्थ प्रस्तुत कर अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। आशा करते हैं कि चित्रों के साथ दिये गये हिन्दी छन्द उन्हें समझाने में सहायता करेंगे।

सभी प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करने का पथ प्राप्त कर सकेंगे इस महान आशा के साथ हम यह ग्रन्थ सभी पाठकों के कर-कमलों में समर्पित कर रहे हैं।

नेमिचन्द जैन एम. ए.
साहित्याचार्य
प्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म. प्र.

जिनके

प्रशान्त ललाम दिव्य स्वरूप को

स्वय इन्द्र ने सहस्र सहस्र लोचनो से देख कर भी

तृप्ति प्राप्त न की

और

अपनी प्रसन्नता के पारावार को

ताडक नृत्य द्वारा भी किंचित अभिव्यक्त न कर सका

ऐसे

पाडुक शिला पर विराजमान

एक हजार आठ स्वार्णम कलशो से

क्षीरोदक द्वारा अभिषिक्त

नवजात वर्द्धमान

अपने जन्म कल्याणक महोत्सव द्वारा

हमारे

जन्म-मरण का नाश करें

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

भीकमसेन रतनलाल जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली ११०००६

जो

समवशरण के हृदय-कमल पर अन्तरीक्ष विराजमान हैं

तथा

जो तीन छत्र, चौंसठ चँवर, देव दुन्दुभि, अशोक वृक्ष,

प्रभा-मण्डल, रत्न सिंहासन, पुष्पवृष्टि

और

दिव्य ध्वनि इन अष्ट प्रातिहार्यो से मंडित हैं

ऐसे

गणधर चर्चित सुरपति अर्चित

तीर्थंकर महावीर प्रभु

अपनी प्रशान्त वैर विरोधी शीतल शान्त छत्र-छाया

में

इस क्षुद्र प्राणी को स्थान दान देकर

धर्माम्मृत का आस्वाद कराने की दया करें

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

पन्नालाल जैन आर्चिटेक्ट (साहित्यकार)

व्यवस्थापक जैन साहित्य प्रकाशन

४९८३ शिवनगर न्यू देहली

११०००५

जिन्होंने भगवती अहिंसा की

सार्वभौमिक सार्वकालिक सार्वजनीन

प्रतिष्ठा द्वारा

दया-करुणा एवं विश्वबन्धुत्व

की

सुधा सरिता बहाकर

विश्व का कोना कोना रस प्लावित कर दिया

उन

सन्मति श्री के

पावन पाद-पद्मों मे

हमारी कोटि-कोटि अर्चनाएं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

राधामोहन जैन, राधा फैन्सी स्टोर्स

६८ चांदनी चौक देहली-६

अधिकृत विक्रेता

फोटो केमरे और उनका सामान, फोटो स्टेट कापीज,

टार्च, चश्मे एव फाउन्टेनपेन इत्यादि

जो

तत्त्व-वोध स्वरूपी सम्यक् ज्ञान के सम्पूर्ण विकसित

कैवल्य के द्वारा वुद्ध ही हैं

जो

तीनों लोकों के परम कल्याणकारी होने से

शिव शंकर ही हैं

जो

रत्नत्रय मंडित प्रशस्त मोक्ष-मार्ग के

विधि-विधायक होने से

ब्रह्मा विधाता ही हैं

एवं

जो आत्म-पौरुष की सर्वश्रेष्ठ उत्तमता को प्राप्त होने से

प्रत्यक्ष ही पुरुषोत्तम विष्णु हैं

ऐसे

एक हजार आठ नामों से संवोधित होने वाले

वर्द्धमान स्वामी

हमारा सवका कल्याण करें

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

साहित्यरत्न पं० हीरालाल जैन 'कौशल' शास्त्री

अध्यक्ष जैन विद्वत्समिति

३७४६ गली जमादार पहाड़ी धीरज देहली-६

जिन्होंने आत्मीय स्वावलम्बन का

परमोत्कृष्ट

आदर्श प्रस्तुत करके

अपने पौरुष को

पूर्ण रूपेण अपनी वैयक्तिक पर्याय में व्यक्त किया

और

जिन्होंने मुक्ति

"प्राणिमात्र का जन्म सिद्ध अधिकार"

इस दिव्य निनाद को

तीनों लोकों में गुंजायमान किया

उन्हीं

महावीर श्री

के पुनीत चरणों में

हमारे कोटि कोटि प्रणाम

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

धर्मचन्द जैन पाड्या

रतन बेस्ट मकराना स्टोन सप्लाई कम्पनी

मकराना (राजस्थान)

मकराना संगमरमर के किसी भी काम के लिये सेवा का मौका दें

जो

श्रमण संस्कृति के अप्रतिम नायक

युग वोध के चैतन्य प्रतीक

एवं

वीतराग विज्ञानता के मूर्तिमान स्वरूप थे

उन

तीर्थंकर वर्धमान महावीर के

पुनीत चरणों में मेरे श्रद्धा प्रसून समर्पित हैं

कवि श्री सुधेश के

स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी उनकी वंदना करता हूं

जिनके वंदन ही भवाताप—

हित दाह निकंदन चंदन हैं।

इस आनन्दित कवि वाणी से

वंदित वे त्रिशलानन्दन हैं॥

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

फर्म हजारीलाल शिखरचन्द जैन

वस्त्र-विक्रेता अमरपाटन (म. प्र.)

—सहयोगी संस्थान—

सिं० हजारीलाल
शिखरचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म. प्र.)

सिं० शिखरचन्द
रतनचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म. प्र.)

जिन्होंने

हिंसा एवं पाखण्ड का ताण्डव समाप्त करके

प्रेम और अहिंसा का सुखद समीर बहाया

तथा

परम आत्म कल्याणकर मूल्यों को जीवन में

प्रयोगात्मक रूप दिया

उन

महाप्रयाणी वीतराग जिनवर दिव्यज्योति स्वरूप

विश्व प्रेरक महाश्रमण

भ० महावीर स्वामी के

पादारविन्दों में

भावसूत्र गुम्फित श्रद्धा-सुमन

अर्पित हैं

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

क्षुद्र श्रावक फतेचन्द जैन सराफ

शमसाबाद (आगरा) उ प्र

अपने ध्यान का ध्येय बनाने से भव्यजीव

स्वद्रव्य परद्रव्य का

तथा

औपाधिक भाव एवं स्वभाव-भाव का

भेद विज्ञान करते हैं

ऐसे

स्वयं सिद्ध

शुद्धात्म स्वरूप को दर्शाने वाले

प्रतिबिंबादर्श

कृतकृत्य परमेष्ठी

श्री सन्मति प्रभु

के

पावन-पाद-पद्मों

में

हमारी कोटि कोटि अर्चनाएँ अर्पित हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

ई० डी० अनंतराज शास्त्री

मु. पो. नल्लूर वाया तेल्लार (एन. ए. डी. ई.) मद्रास

जो गृहस्थावस्था त्याग कर मुनिधर्म साधन द्वारा
चार घातिया कर्म नष्ट होने पर
अनंतचतुष्टय प्रगट करके
कालान्तर में
चार अघातिया कर्मक्षय होने पर
पूर्ण मुक्त हो गए हैं
तथा
जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का सर्वथा अभाव होने से
समस्त आत्मीक गुण प्रगट हुए हैं
और
जो लोकाग्र शिखर पर किंचित न्यून पुरुषाकार
विराजमान हैं
ऐसे

सिद्ध परमेष्ठी श्री महावीर परमात्मा

हमारे निरन्तर आराध्य बने रहें
परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता —
जयन्ती प्रसाद सुकमालचन्द जैन
मु पो सेढा लई० सरधना
(जिला मेरठ) उ प्र

जिन्होंने सर्व धर्म समन्वय सम्पन्न

समझौता वादी नीतियों की नींव पर

अनेकान्त सिद्धान्त का

वह प्रामाणिक धर्म-महल खड़ा किया

जिसकी छत्रच्छाया में

प्राणिमात्र चैन की सांस लेता हुआ

आज

अपना आत्म-कल्याण कर सकता है

उस

अनेकान्त प्रतिपादक-वस्तु-स्वरूप दिग्दर्शक

श्री वीर प्रभु के

चरण-कमलों में शत-शत अभिनन्दन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

चमनलाल फूलचन्द शाह जैन

मु. पो. पादरा (वड़ोदा)

गुजरात

जिनका विमल स्फटिक मणि तुल्य पारदर्शी मानयत्व

शुभ अर्हत्व में परिणत होकर

अलौकिक आदर्श की चरम-सीमा का

ऐसा

सच्चिदानन्द घन ध्रुव केन्द्रबिन्दु

बन गया

जिसका माप तीनों कालों और तीनों लोकों की

वृहद परिधियों से नहीं

बल्कि

मात्र आत्म केन्द्रता में ही सम्भव है

उन

परम ज्योति अरिहंत प्रभु

श्री वीरनाथ के

चरणों में हमारा कोटि कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

तिलोकचन्द पाटनी

प्रचारमन्त्री मनीपुर प्रांतीय दि० भ० महावीर २५०० सौ वा

निर्वाण महोत्सव समिति इम्फाल (मनीपुर)

जो सच्चे अर्थों में एक आदर्श नेता हैं-प्रणेता हैं

परन्तु

जिन्होंने वंध-मार्ग का नहीं अपितु

मोक्ष-मार्ग का नेतृत्व किया

एवं

वाचाल उपदेष्टा वनकर नहीं

वल्कि

कैवल्य प्राप्ति तक मौन साधक रहकर

उन्होंने जैसा देखा, वही सवको कर दिखाया

ऐसे

कर्म पर्वतों के भेत्ता तथा विश्वतत्त्वों के वेत्ता

महावीर श्री

के चरणारविंदों का हम वार-वार

अभिनंदन करते हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

नथमल भागचन्द जैन

जनरल मर्चेन्ट गवर्नमेंट फुडग्रेन

एण्ड शुगर होल सेलर्स

मु. पो. लालगोला पिन कोड ७४२१४८

जिला मुर्शिदावाद (पश्चिमी बंगाल)

जिनकी स्याद्वादमयी मन्दाकिनी

विविध नय कल्लोलों से तरंगित होकर

आज भी

इस वसुन्धरा पर

अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है

तथा

जिसके सम्यग्ज्ञान सरोवर में

विवेकी मानस हंस किल्लोलें करते हुए

अपनी चिर पिपासा शांत करते हैं

ऐसे

महावीर वर्द्धमान स्वामी

हमें भी

अपनी दिव्य-ध्वनि की विमल गंगा में

अवगाहन करने का सुअवसर दें

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभालाल जैन

बीडी निर्माता एवं बीडी पत्ते के व्यापारी

चमेली चौक सागर (म प्र)

जिनके

महा मंगलमय पंच कल्याणक महोत्सव

न केवल मानवेन्द्रों द्वारा वल्कि शतेन्द्रों द्वारा सम्पन्न हुए

और जो

अलौकिक एवं चामत्कारिक चौंतीस अतिशयों

तथा

अष्ट महा प्रातिहार्यों जैसे वाह्य ऐश्वर्यो के स्वामी थे

वे

अतंरंग अनंत चतुष्टय लक्ष्मी के धनी

श्री महावीर स्वामी

हम सब को

ऋद्धि सिद्धि के प्रदाता वनें

परम-पुनीत- पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सेठ खेमचन्द मोतीलाल जैन

कुशल कारीगिरों द्वारा वनवाई गई ढोलक छाप वीड़ी के निर्माता

पलोटन गंज सागर म. प्र.

हे भव्य जीवो!

मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश ही हीयमान होकर

भव-भ्रमण के निविड तिमिर मे

अनत कल्पकालो से असहाय भटकता फिरा

किन्तु

ज्यो ही मैंने अपने स्वरूप का भान किया

स्वपर भेद विज्ञान किया।

आत्म साधना का दृढ व्रत ठान लिया

त्यो ही चल पडा—

सम्यक रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ

और जाकर रुका वहा

लोकाग्र के शिखर पर

जहा मेरी अन्तिम मजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वहीं उसी पथ से

मैं तुम्हारा प्रकाश स्तम्भ बन कर कब से

खडा हू

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

बालचन्द श्री व्रती वाड्मय सस्थान

सचालक फूलचन्द बाबूलाल जैन वैद्य

खुरई (जिला सागर) म प्र

जिनके कैवल्य रूपी चैतन्य आदर्श में

लोकालोक के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ

युगपत्

निज गुण पर्यायों सहित

त्रयकाल

प्रतिविम्वित होते रहते हैं

ऐसे

प्रत्यक्षदर्शी सन्मार्ग प्रकाशक सर्वज्ञ-सूर्य

भगवान महावीर स्वामी

हमारे अन्तर्वाह्य लोचनों के आगे
निरंतर झूलते रहें
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

कृषि पंडित श्रीमन्त सेठ ऋषभ कुमार बी. ए.

लेंड लार्ड एन्ड वेंकर्स

भूतपूर्व विधायक खुरई (सागर) म. प्र.

जिन्होंने
आवश्यकताओं की समानान्तर मर्यादाओं से
बाहर भागने वाली दुष्प्रवृत्तियां
संग्रह परिग्रह जमाखोरी आदि की
आशक्तिपूर्ण
मूर्छा का
डटकर विरोध किया
उन अकिंचन अरिहंत परमात्मा

श्री अतिवीर स्वामी

के
चरण सरोजों में
भावभीनी पुष्पाञ्जलि समर्पित है
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता —
धन्नालाल प्रेमचंद सराफ
नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र

फर्म—दमरूलाल कन्नालाल सराफ
सराफी दुकान खुरई

फर्म—सराफ प्रदर्श
गल्ले के व्यापारी खुरई

जो आत्म-स्वरूप में संस्थित होते हुए भी

सर्व व्यापी हैं

सम्पूर्ण लोक व्यवहार-व्यापारों के वेत्ता होने पर भी

परम अकिंचन हैं

इच्छाओं का अस्तित्व न होने पर भी

जिनके

सर्वांग से दिव्य-ध्वनि खिरती है

जाग्रत उपादन वाले भव्य जीवों को

जिनकी ध्वनि जड़ होते हुए भी समर्थ निमित्त बनती है

ऐसे

समवशरण-साम्राज्य के एकच्छत्र निर्लिप्त सम्राट् अरहंत प्रभु

श्री महावीर स्वामी की

मांगलिग शरण में

मैं

अपना आत्म-सर्मपण करता हूं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

चौधरी आइल मिल्स

स्टेशन रोड खुरई (जिला सागर) म. प्र.

(विशुद्ध खाने का तेल बनाने में शासन से स्वर्ण-पदक प्राप्त)

जिन्होने पर्याय गत अहं को गौण करके द्रव्यगत अहं के

दिग्दर्शन की सम्यक् विधि

प्रतिपादित की

और

जिन्होने

मिथ्यात्व पर सम्यक्त्व की

स्वार्थ पर आत्मार्थ की

ससार पर मुक्ति की

विजय

दुन्दुभि बजाई

उन

महावीर श्री

के युग चरणो मे मेरा वारम्बार नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

तार सेठी टेलीफोन ८१, २३ निवास ३१

अर्पयिता —

फर्म धन्नालाल गुलाबचद सेठी

अनाज तिलहन के व्यापारी एव कमीशन एजेन्ट

अधिकृत वितरक —इण्डियन आइल कारपोरेशन लि०

मु पो खुरई (जिला सागर) म प्र

हे परम अकिंचन निर्ग्रन्थ देव !

श्री महावीर प्रभो !

आपके पास किंचिन्मात्र भी लौकिक विभूतियें नहीं हैं

तथापि

आप तीनों लोकों के श्रेष्ठ एवं सुविख्यात दान शिरोमणि हैं

क्योंकि

निरन्तर ही शम-सम की अविनश्वर

मणियां लुटाते ही रहते हैं

आप

ऐसे अचल हिमालय हैं जो स्वयं जल हीन होने पर भी

गंगा जैसी अगणित सरिताओं का

उग्दम केन्द्र हैं

और

हम अपार जल-राशि से भरे हुए ऐसे अभागे खारे समुद्र हैं

जिनमें से

एक भी नदी निकलती नहीं है

अतएव

हम भिक्षुक होकर आप से अपना ही स्वरूप मांगने

आपकी शरण में आये हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

ज्ञानकुमार हुकमचंद जैन धनोरावाले

शिवाजी वार्ड खुरई (जिला सागर) म. प्र.

जिनका

परमौदारिक शरीर

काम क्रोधादिक सर्व निदनीय वैभाविक चिह्नो से

सर्वथा वर्जित है

तथा

जिनके दिव्य वचनो से

लोक मे धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन होता है

ऐसे

गणधर इन्द्र एव अनेकात मूर्ति सरस्वती द्वारा स्तुत्य

परमात्मा

श्री महावीर स्वामी

पुनीत चरणो मे

हमारा

कोटि-कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी शीलचद अनिल कुमार जैन

चौधरी फटफोस वस्त्र भडार

नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र

हे महावीर प्रभो !

वह भी एक कूप मंडूक था !

मैं भी एक पर्यायमूढ़ कूप-मंडूक हूं !!

वह पशु पंचेन्द्रिय था

मैं मनुष्य पंचेन्द्रिय हूं

किन्तु……

नाथ !

उसकी भाव-भीनी भक्ति वंदना-पूजन-अर्चना ने

एक कमल पांखुरी लेकर ही उसकी

वह

तुच्छ पर्याय छुड़ा दी

और

सुर-पर्याय प्रदान की

फिर

आप ही वतलाईये आप की पुनीत सेवा में

मैं क्या प्रदान करूँ कि

मुझे वैयक्तिक पर्याय से

मुक्ति मिले

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सतपाल क्लाथ स्टोर

प्रो. परमानन्द जेऊमल सिंधी

स्टेशन रोड खुरई (सागर) म. प्र.

जिनका

परमौदारिक शरीर

काम क्रोधादिक सर्व निंदनीय वैभाविक चिह्नों से

सर्वथा वर्जित है

तथा

जिनके दिव्य वचनो से

लोक मे धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन होता है

ऐसे

गणधर इन्द्र एव अनेकान मुनि सरस्वती द्वारा स्तुत्य

परमात्मा

श्री महावीर स्वामी

पुनीत चरणो मे

हमारा

कोटि-कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी शीलचद अनिल कुमार जैन

चौधरी कटपीस वस्त्र भडार

• नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र

हे महावीर प्रभो !

वह भी एक कूप मंडूक था !

मैं भी एक पर्यायमूढ़ कूप-मंडूक हूं !!

वह पशु पंचेन्द्रिय था

मैं मनुष्य पंचेन्द्रिय हूं

किन्तु……

नाथ !

उसकी भाव-भीनी भक्ति वंदना-पूजन-अर्चना ने

एक कमल पांखुरी लेकर ही उसकी

वह

तुच्छ पर्याय छुड़ा दी

और

सुर-पर्याय प्रदान की

फिर

आप ही वतलाईये आप की पुनीत सेवा में

मैं क्या प्रदान करूँ कि

मुझे वैयक्तिक पर्याय से

मुक्ति मिले

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सतपाल क्लाथ स्टोर

प्रो. परमानन्द जेऊमल सिंधी

स्टेशन रोड खुरई (सागर) म. प्र.

जिनकी

विशाल हृदया अहिंसा से मात्र वैशाली का ही नही

बल्कि

तीनो लोको के हृदय विशाल हो गये

और

जिनकी पावन निर्वाण विभूति से मात्र पावा ही नही

बल्कि

प्रत्येक आत्मा का कोना कोना पावन हो गया

ऐसे

जाज्वल्यमान ज्योतिर्मय तीर्थङ्कर

परमात्मा महावीर स्वामी

के

पुनीत चरणो मे

हमारी कोटि कोटि वदनाएँ

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी खेमचद मुन्नालाल जैन

नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र

कुशल कारीगरो द्वारा हिन्दनुनारण हार (चरखा-छाप) बीडी के

एकमात्र निर्माता

जो
अनंत ज्ञान द्वारा अपने अनंत गुण पर्यायों को
एवं
समस्त जीवादि द्रव्यों को एक साथ ही
विशेप प्रत्यक्षता से
कर-तल आमलक वत् जानते हैं
तथा
जिनके चतुर्दिक पार्श्व में
लौकिक प्रभुत्व अतिशय एवं पूज्यता का
वाह्य संयोग
निश्चयतः पाया ही जाता है
ऐसे
अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ परमात्मा

श्री वर्द्धमान स्वामी के

चरणों में
हमारी कोटि कोटि वन्दनाएं
अर्पित
हैं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन
पुराना बाजार मुंगावली (गुना) म० प्र०
कुशल कारीगरों द्वारा हिन्दनुतारणहार (चरखा-छाप) वीड़ी के
एकमात्र निर्माता

हे भव्य जीवो!
मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश्य ही हीयमान होकर
भव-भ्रमण के निबिड तिमिर मे
अनन्त कल्पकालो से असहाय भटकता फिरा
किन्तु
ज्यो ही मैंने अपने स्वरूप का भान किया
आत्म-साधना का दृढ व्रत ठान लिया
त्यो ही चल पडा
सम्यक रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ
और
जाकर रुका रुका रहा लोकाग्र के शिखर पर
जहा पर मेरी अन्तिम मजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वही उसी पथ से
मैं तुम्हारा प्रकाश-स्तम्भ बन कर कब से खडा हू।

मै स्वय वर्द्धमान हू

तुम भी स्वय सिद्ध वर्द्धमान हो
जरा अपनी ओर निहारो तो
मेरा
वरद-हस्त तुम्हारे ऊपर है
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयान्जलि
अर्पयिता —
चौधरी खेमचद मुन्नालाल जैन
आचवल वार्ड बीना (जिला-सागर) म प्र
कुशल कारीगरो द्वारा हिंदनुतारणहार (चरखा छाप) बीडी के
एकमात्र निर्माता

जिनके समवशरण का अलौकिक वैभव

समाजवाद-साम्यवाद

एवं

सर्वोदय वाद

का

एक ज्वलंत-आदर्श एवं प्रमाणिक प्रतीक था

उन अंतरीक्ष परमात्मा

श्री वीर प्रभु के

चरणार विंदों में

हमारी कोटि-कोटि वंदनाऐं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

दीपचंद मुलायम चंद एवं समस्त मलैया परिवार

खुरई (जिला सागर) म. प्र.

हे परम ज्योति वीरप्रभो !

आप एक ऐसे अनुपम चिन्मय रत्न दीप हैं

जिसमे

आवश्यकता नही है

वर्तिका की, तैल की, धूम्र की

तथापि

अपने शाश्वत ज्ञान-प्रकाश से

सम्पूर्ण लोकालोक को आलोकित करते रहते हैं

अतएव

इस पच्चीस सौवी दीपमालिका के पावन पर्व पर

आज

मैं आप की लौ द्वारा ही अपना ज्ञान दीप

प्रकाशित करने आया हू

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

रमेशचद ताराचद जैन

वस्त्र विक्रेता स्टे० रोड खुरई (सागर) म प्र

जिन्होंने
इस युग में वीतरागता के धर्मतीर्थ का प्रवर्तन
अहिंसा-सत्त्य अचौर्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह की
जीवन्तमूर्ति वन कर किया
जो
शमवशरणादिक वाह्य विभूतियों से
और
अनंत चतुष्टयादिक अंतर्वैभव से सम्पन्न थे
तथा जिनके
तीर्थंकर नामकर्म की सर्वोत्कृष्ट महापुण्य प्रकृति का उदय था
ऐसे
निर्लिप्त अनासक्त योगी परम आर्हत

तीर्थंकर श्री महावीर जिनेश्वर के

पादपद्मों में
हमारी कोटि कोटि वंदनाएं
परम-प्रनीत पच्चीस वें शतक पर भ.व-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
सिंघई परमानंद बाबूलाल जैन
जनरल किराना मर्चेंट एवं
पेटेंट दवाइयों के विक्रेता
मु. पो. खुरई (जिला सागर) म. प्र.

जिहोंने

वीरता की परिभाषा को दूसरो पर विजय प्राप्त करके नही

प्रत्युत

अपने विपर्यय स्वरूप पर विजय प्राप्त करके बदल दिया

तथा

जिहोने वीर भोग्या वसुधरा के परम्परागत सिद्धात को

चुनौती देकर वीतरागता के पावन-पथ पर

अपने कदम बढाते हुए

और उसके स्थान पर

"वीर त्याज्या वसुधरा" के सिद्धात की प्राण प्रतिष्ठा की

ऐसे

वीर-महावीर अतिवीर प्रभु के

वीतरागी चरणो मे

मेरा वारम्वार नमस्कार अर्पित हो।

परम-प्रतीत पच्चीस वें शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

छावडा बूट हाऊस

प्रो सरदार चरणजीत सिंह छावडा

स्टेशन रोड खुरई (जिला सागर) म प्र

१ सच्चाई और सरल व्यवहार व्यापार की कुजी है।

२ सत्यता से व्यापार बढता है और शाख बनती है।

जिन्होंने
इस अवसर्पिणीकाल के चौथे चरण की कर्मभूमि में
गर्भावतरण एवं जन्मावतरण के
अलौकिक दृश्य दिखाये
तथा
वैराग्य प्रकरण एवं तत्त्वं वोध के प्रतापी पुरुषार्थ ने
उसे तपोभूमि में परिणत कर दिया
ऐसे
जीवन रंगभूमि के अप्रतिम अंतिम अधिनायक

तीर्थेश्वर श्री वर्द्धमान प्रभु ने

सांसारिक स्वांगों से मुक्ति पाकर
जो
अपने सहज सिद्ध शाश्वत स्वरूप की उपलब्धि की
वे

हमारे भी नयन-पथ गामी वने
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
ज्योतिषाचार्य त्रिलोकी नाथ जैन
२३४१ धर्मपुरा देहली
११०००६

जिन्होने

बाल्य-वय मे फणधर वेषी सगम देव के

और

उच्छृखल मत्तगयदो के मद चूर-चूर किये

कुमार-वय मे

अनग अप्सराओ के रति-भावो को

विरतिभाव से परास्त किया

तारुण्य मे

परिशुद्ध आत्मा से कचन काया की किट्टिमा

तपाग्नि द्वारा पृथक की

ऐसे

अनुभव वृद्ध जन्म जरा-मृत्यु से रहित

अक्षय अनत पद से विभूषित

श्री महावीर प्रभु को

कोटि कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

सेठ विजय नारायण वीरेन्द्रनारायण

जगतटाकोज डिस्टी ब्यूटर्स

चादनी चौक देहली

११०००६

जिन

महावीर प्रभु ने घाति कर्म शत्रुओं को नष्ट करके
अनंत एवं अनुपम क्षयिक गुणों की प्राप्ति की
तथा जिन्होंने
सम्पूर्ण भव्य जीवों को परमानंद प्रदाता
केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा
जो
आज भी भव्य जीवों के लिये मुकुट मणि के समान
शोभायमान हैं
ऐसे

त्रैलोक्य तारण समर्थ
वर्द्धमान जिनेश्वर

को
वन्दे तद्गुण लब्धये के स्वर में
मैं
स्तुति वंदना करता हूं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयांञ्जलि
अर्पयिता :—
मगनमाला जैन धर्मपत्नी पंकजराय जैन
सुनील कुमार नीनारानी जैन
१२८६ वकीलपुरा देहली
११०००६

हे धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक महावीर प्रभो !

आप

उत्तम गुणो के सागर अठारह दोषो से वर्जित

मोक्षमार्ग प्रणेता

अष्ट कर्म रिपु सहारक पचेन्द्रिय विषय कषाय विजेता

पच महाव्रत-पच-समिति त्रय गुप्ति के

अधिष्ठाता

अत्यन्त महिमा से मडित

निष्कारण तारण तरण

एव

मोहान्ध कार के विध्वसक हैं

हे नाथ

आप की स्तुति जब गणधर इन्द्र भी नही कर सकते

तो

मैं किस खेत की मूली हूँ

अत

नमस्कारो मे ही सारी स्तुतियें गूथ रहा हूँ।

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

सेठ पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले

१४७० रगमहल

एम० पी० मुकर्जी मार्ग देहली

११०००६

सत्य और अहिंसा ही 'विजय' का प्रतीक है

अतएव जिन्होंने

असत् एवं अनात्मा

पर विजय पाई

और

'वीर भोग्या वसुन्धुरा' की

परम्परा गत नीति को चुनौती देकर

वीर त्याज्या वसुन्धरा

का

विजय स्तम्भ त्रिभुवन के वक्ष के ऊपर रोपा

उन्हीं

१००८ श्री महावीर जी के श्री चरणों में

हमारा बारम्बार नमस्कार

परम-पुनीत पच्चीस वें निर्वाण शतक पर भाव-भीनी विनयांञ्जलि

अर्पयिता :—

विनोदकुमार विजय कुमार जैन

१३१४ वैद्यवाड़ा दिल्ली ११०००६

भगवान महावीर-वर्द्धमान

मांगलिक-जन्मचक्र
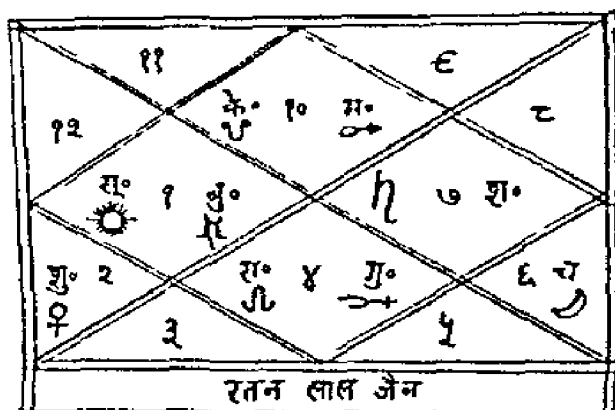
जन्म चैत्र सुदी १३ सोमवार ई० पूर्व ५९९

नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनि सिद्धार्थ संवत्सर (५३)

राशि-कन्या

जन्म स्थान-वैशाली कुण्डलपुर (क्षत्रिय कुंड)

सिद्धार्थ-पिता त्रिशला-माता

चेटक-नाना सुभद्रा-नानी

सेनापति सिंह भद्रादि १० मामा

भगवान महावीर स्वामी के जन्म-लग्न का फलितार्थ

ले० ज्योतिषाचार्य श्री त्रिलोकीनाथ जी जैन, २३४१ धर्मपुरा, देहली

अहिंसा के अवतार भगवान महावीर स्वामी के जन्म के समय निर्मल नभ-मंडल में मकर लग्न उदय में थी। मकर लग्न में मंगल और केतु ग्रह अवस्थित हैं।

द्वितीय स्थान में कुंभ राशि है। तृतीय स्थान में मीन राशि है। चतुर्थ स्थान में मेष राशि के अन्तर्गत सूर्य और बुध हैं। पंचम स्थान में शुक्र वृष राशि गत है। षष्टम् स्थान में मिथुन राशि है। सप्तम् स्थान में कर्क राशि में राहु गुरु हैं, अष्टम स्थान में सिंह है। नवम् स्थान में चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। दशम् स्थान में शनि तुला राशि के अन्तर्गत अवस्थित है। एकादश स्थान में वृश्चिक राशि है तथा द्वादश स्थान में धन राशि विद्यमान है।

लग्न में मंगल मकर राशि में उच्चता को प्राप्त है। यदि मंगल अपनी उच्च राशि में अथवा अपनी मूल त्रिकोण राशि में या स्वराशि में होकर केन्द्र में स्थित हो तो 'रुचक' नाम का योग बनता है।

रुचक योग में जन्म लेने वाले मनुष्य का शरीर अत्यन्त बलिष्ठ और वज्रमयी होता है। अपने सम्यक् विचारों तथा सत्कार्यों से वह विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। रुचक योग वाला जातक सम्राट् या सम्राट् के समकक्ष होता है। उसकी आज्ञा की कोई अवहेलना नहीं करता अर्थात् प्राणिमात्र उसकी आज्ञा मानने के लिये सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। रुचक योग वाला महापुरुष अपने भक्त और श्रद्धालुजनों से चारों ओर से घिरा

रहता है। उसका चरित्र अत्यन्त उच्च कोटि का होता है। ऐसा जातक प्रलोभन या दबाव में आकर अपने निश्चय को कदापि नहीं बदलता।

सूर्य और बुध के मेष राशि में स्थित होने से लग्न में बैठे हुए मंगल में और भी अधिक विशेषता होती है। मंगल पर गुरु की सप्तम दृष्टि मान में सुहागा जैसा कार्य कर रही है। मंगल ने जातक के शरीर को सर्वोत्कृष्ट कुल में जन्म लेने का अधिकार प्राप्त कराया है। उसने ही उसे उच्चासन पर विराजमान करके शासन के अनुकूल शारीरिक बल एवं सर्वोपरि मान-प्रतिष्ठा प्रदान की। मंगल के साथ केतु भी है। मंगल केतु से अति शीघ्रगामी है अतएव मंगल ने अपने और सूर्य-बुध के गुण केतु को प्रदान करके उसे अपना चमत्कार दिखाने के लिए लग्न (शरीर) में छोड़ दिया।

केतु ग्रह कह रहा है—कि मुझ में अकस्मात् परिवर्तन लाने का विशिष्ट गुण है तथा मुक्ति दिलाने का अधिकार प्राप्त है इसलिये मैं इस जातक के शरीर को अचानक ही परिवर्तन शील बनाऊँगा और ऐसी घटनाएँ घटित करूँगा जिन्हें कभी किसी ने स्वप्न में भी न विचारा हो। समस्त ऐहिक सुखों से वंचित करके एक अनोखे आदर्श पथ पर चलने के लिए जातक के शरीर को बाध्य करूँगा। पुनश्च केतु ग्रह कह रहा है कि मैं तुच्छ विषय सुखों की लालसा को लुप्त करके आकुलता रहित अविनाशी शाश्वत परम सुखों की ओर ले जाऊँगा, क्योंकि मुझमें उच्च के सूर्य और उच्च के मंगल के गुण विद्यमान हैं। उच्च के गुरु की मुझ पर और लग्न (शरीर) पर दृष्टि है। गुरु सन्मार्ग दर्शक है।

भगवान महावीर स्वामी के शरीर का सम्बन्ध सद्गुरु से हुआ और सन्मार्ग पर चलकर आवागमन के चक्कर को सदा-

सर्वदा के लिये समाप्त कर मोक्ष रूपी नवल वधू से नाता जोड़ा। गुरु की सत्कृपा से और ग्रहों के योगायोग से भगवान् महावीर को इस प्रकार की यशः कीर्ति उपलब्ध हुई जो आज तक न भुलाई जा सकी है और न युग युगान्तरों तक भुलाई जा सकेगी।

मंगल ग्रह में महान हठवादिता का गुण होता है। वलात् शासन कराना चाहता है। मंगल की दृष्टि जनता और उसके मन पर पूर्णरूपेण है। ऐसे मनुष्य को वलपूर्वक राज्य करते हुए जनता और उसके मन पर राज्य करना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं हुआ। भगवान् महावीर ने जनता और उसके मन पर प्रेम पूर्वक सद्भावनाओं की छाप अंकित की, जिसमें वल का प्रयोग किंचित भी नहीं किया गया। यह कृपा भी गुरु की है। जिस भाव को राहु और व्ययेश (गुरु) देखते हों मनुष्य उस भाव से उदास और पृथक रहते हैं। यहाँ राहु और गुरु दोनों लग्न (शरीर) देख रहे हैं इसलिये भगवान् महावीर ने शारीरिक नश्वर सुखों को अति तुच्छ समझा और शरीर को तपस्या की भेंट कर दिया तथा झूठे आडम्बरों और झूठी मान प्रतिष्ठा को छोड़ कर सत्यता की खोज करने तथा आत्मा को निर्विकारी बनाकर सदा के लिये अमरत्व प्रदान करने हेतु शरीर को सही मार्ग पर चलने के लिए वाध्य कर दिया।

मकर लग्न चर लग्न है, पृथ्वी तत्व है अतएव भगवान् महावीर ने अपना निवास स्थान स्थिर रूप से एक जगह नहीं किया। भूमि पर ही शयन किया।

चतुर्थ स्थान में सूर्य मेष राशि के अन्तर्गत उच्चता को प्राप्त है। सूर्य आत्मा है, सूर्य प्रखर ज्योति स्वरूप है, सूर्य पिता कारक है, सूर्य अश्व का स्वामी है। नभ-मंडल में सूर्य के समक्ष समस्त ग्रह विलीन हो जाते हैं। चतुर्थ स्थान से माता का, जनता का, स्वयं के सुख का तथा भूमि का विचार किया जाता है। सूर्य

मातृ स्थान मे स्थित होकर सकेत दे रहा है कि—

माता का सुख उच्च कोटि का होना चाहिये, भूमि सबधी सुख तथा घोडे हाथियो सबधी विशेष सुख होना चाहिये। पिता का सुख भी उच्चतम कोटि का होना चाहिये और उत्कृष्टता को उज्ज्वलतम सुन्दर सुखद भावनाएँ लिये हुये आत्मा को जन साधारण से सम्पर्क करना चाहिये तथा उसे सूर्य जैसा प्रताप प्रदर्शित करना चाहिये।

सूर्य के साथ बुध का योग है। बुध नवम् स्थान का स्वामी है और छटवें स्थान का भी स्वामी है। सूर्य अष्टम् स्थान का स्वामी है। अष्टमेश और नवमेश का योग यदि किसी जातक की जन्मकुडली मे होता है तो राज्य भग का योग होता है तथा उच्च के ग्रह को यदि दो क्रूर ग्रह देखते हो तो भी राज्य भग का योग होता है।

सुख स्थान मे, मातृ स्थान मे तथा भूमि स्थान मे सब प्रकार के सुखो से वचित कराने का विचार सूय ने किया। आत्मा को बुध ने याज्ञिक कर्म (आत्म साधन) मे प्रवृत्त करने का अपना विचार बनाया, चूकि बुध चन्द्र लग्नाधिपति है, इस कारण मन मे आत्म-साधन करने का अपना विचार निश्चय पूर्वक दृढ किया।

बुध बुद्धि ज्ञाता है, वाणी का कर्त्ता है। वाणी एव बुद्धि बल द्वारा जन साधारण से सम्पर्क स्थापित कर उसके मन मे भी याज्ञिक कर्म कराने की भावनायें बुध ने जागृत कर दी। सूर्य और बुध मेष राशि (अग्नि राशि) मे है। चतुर्थ स्थान (अग्नि राशि) मे सूर्य कह रहा है—कि मैं सब सुखो को तप की तेज अग्नि मे जला कर भस्म कर दूगा और आत्मन् को इतना प्रताप-वन्त कर दूंगा कि वह सोटची कुदन बन जावेगा।

बुध कह रहा है—कि मैं जातक को भाग्य पर भरोसा न

रखने वाला कर्मशूर बना दूंगा क्योंकि मुझ पर और सूर्य पर शनि-मंगल की पूर्ण दृष्टि है और मंगल एवं केतु का केन्द्रिय शासन है। यदि इनकी दृष्टि न होती तो मैं सांसारिक सुखों का आनन्द ही आनन्द दिलाता। इस परिस्थिति में मैं तो चाहता हूँ कि भगवान् महावीर स्वामी की आत्मा परम—धाम (मोक्ष) में पहुँच कर आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाये। उच्च के सूर्य ने चतुर्थ स्थान में स्थित होकर सहस्त्रों सूर्य जैसा प्रकाश चारों दिशाओं में फैलाकर आज तक भगवान् महावीर स्वामी के नाम को लोक भर में चिरंतन व्याप्त किया।

भगवान् महावीर स्वामी के समय में हिंसा का अधिकाधिक बोलबाला था। यज्ञ में जीवित अश्वादिकों की आहुति दी जाती थी। तत्कालीन हिंसात्मक असत् धर्म की प्रवृत्ति का अवलोकन जीवित प्राणियों को हवन-कुंड की प्रज्ज्वलित अग्नि में भस्म होते देख कर भगवान् महावीर स्वामी की दयार्द्र आत्मा हा हाकार कर उठी और अत्यन्त द्रवीभूत होकर अपने समस्त ऐहिक सुखों का परित्याग कर प्राणिमात्र को आकुलता रहित सच्चा सुख प्राप्त करने का उन्होंने दृढ़ संकल्प किया। यह सत्कार्य भी उच्च के सूर्य ने ही किया।

पंचम स्थान में शुक्र स्वराशि के अन्तर्गत है। शुक्र पर किसी शुभ ग्रह की या किसी अनिष्टकारी पापिष्ठ ग्रह की दृष्टि नहीं है। पंचम स्थान से विद्या यंत्र-मन्त्र, सन्तान, सिद्धि आदि के प्रबन्ध का विचार किया जाता है। शुक्र स्वयं ही आचार्य है। मकर लग्न में शुक्र को कारकता प्राप्त होती है। अर्थात् एक प्रकार से विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। यदि हम ध्यान से देखेंगे तो शुक्र पंचम स्थान में समस्त ग्रहों के गुणों को लिये हुये और समस्त ग्रहों का बल धारण किये हुये स्वराशि में स्थित होकर महाबली और हर्षोत्फुल्ल दिखाई देता है। मेष राशि में सूर्य और

बुध विद्यमान होने से दोनो ने अपने-अपने गुण और अपना-अपना बल मगल को प्रदान कर दिया। मगल मकर राशि स्थित केतु के साथ है। मगल और केतु ने सूर्य-बुध के तथा स्वय अपने-अपने गुण और बल शनि को प्रदान किये। अब शनि सूय, बुध, मगल, केतु के गुणो को धारण करके तुला राशि मे विराजमान है। शनि ने अपना एव सूर्य, बुध, मगल, केतु के गुण शुक्र को प्रदान कर दिये। इस भाति शुक्र मे सूर्य बुध, मगल केतु और शनि के बल और गुण समाविष्ट हो गये। राहु और गुरु कर्क राशि गत होने से चन्द्रमा को गुरु और राहु ने अपने-अपने गुण और बल दे दिये। चन्द्रमा कन्या राशि गत है। चन्द्रमा ने अपने तथा गुरु-राहु के गुण बुध को दे दिये इसलिये शुक्र मे सूर्य, बुध, मगल, केतु, शनि, राहु, गुरु और चन्द्र के गुण और बलो का समावेश हो गया। पचम स्थान (क्रीडा स्थान) मे शुक्र कह रहा है कि मुझ मे अष्ट ग्रहो का बल है और उन अष्ट ग्रहों मे भी तीन उच्च के ग्रहो की भावनायें है। मकर लग्न होने से मैं केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी होना हुआ विशेषाधिकार को प्राप्त हूँ। मैं इस जातक को यन्त्र-मन्त्र तन्त्र तथा उच्चकोटि की ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त कराने मे समर्थ हूँ। जातक को ऐसी अलौकिक विद्या से विभूषित करूँगा जो जन-जन को सदैव आकर्षित करती रहे और इनके गुणो की पूजा अर्चा भी होती रहे।

भगवान् महावीर स्वामी को यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र सम्बन्धी उच्चकोटि की विद्यायें, विशिष्ट बुद्धिमत्ता, महाज्ञानी, सर्वज्ञ होने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त हुआ। अपने जीवन काल मे ऐसे ऐसे चमत्कार दिखाये कि जिससे प्राणिमात्र को उनके समक्ष सदा नतमस्तक होना पडा।

सप्तम स्थान में गुरु कर्क राशि के अन्तर्गत है और राहु भी

कर्क राशि में विद्यमान है। कर्क राशि में गुरु उच्चता को प्राप्त है। यदि गुरु उच्च राशि का या स्व राशि का अथवा मूल त्रिकोण राशि का केन्द्र में हो तो 'हंस' नाम का योग बनता है।

हंस योग वाला जातक अत्यन्त सुन्दर होता है, रक्तिम आभा-युक्त मुखाकृति, ऊँची नासिका, प्रफुल्लित कमलोपम सुन्दर चरण युगल, गौराङ्ग, हँसमुख, उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल वाला होता है। ऐसा महापुरुष मधुर भाषी होता है। उसके मित्रों तथा प्रशंसकों की संख्या निरन्तर बढती ही रहती है। सभी के साथ भेद रहित श्रेष्ठ व्यवहार करने का इच्छुक रहता है और उसमें चुम्बकीय व्यक्तित्व होता है।

गुरु विद्या, सन्तान, धन, एवं भाग्य का विधायक एवं प्रशस्त पथ प्रदर्शक होता है। गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

"गुरु गोविन्द दोऊ ठाड़े किनके लागे पाँय।
बलिहारी गुरु की जिन गोविंद दिये बताय॥"

मकर लग्न वाले व्यक्तियों को गुरु विशिष्ट फल देने के लिये तत्पर नहीं रहता क्योंकि बारहवें और तीसरे स्थान का स्वामी गुरु होता है। गुरु की दृष्टि लग्न पर ग्यारहवें और तीसरे पर है।

जातक के शरीर को उच्चासन पर आरूढ़ कराने का विचार सन्मार्ग पर चलाने का संकेत, मुक्ति-रमा को प्राप्त कराने की धारणा तथा उच्च विद्याओं से अलंकृत करने का संकल्प गुरु में विद्यमान है। गुरु पर अपने मित्र उच्च के मंगल की दृष्टि है जिससे परस्पर एक दूसरे से सन्मुख दृष्टि सम्बन्ध बना रक्खा है। गुरु के साथ राहु भी सप्तम में है। राहु यदि कर्क राशि में केन्द्र स्थान में स्थित हो तो कारकता को प्राप्त होता है। राहु की दृष्टि भी गुरु की ही भाँति है।

भगवान महावीर स्वामी का शरीर वज्र के समान मजबूत

और अत्यन्त पुष्ट था और ऐसे जातक अन्त समय तक अपने शारीरिक बल मे हीन नही होते और उनके यश कीर्ति की पताका विश्व मे सदा-सर्वदा फहराती ही रहती है। राहु और गुरु कह रहे हैं कि हम सप्तम स्थान मे स्थित हैं। पृथकोत्पादक कारण बनाना हमारा स्वभाव हो गया है अतएव हम स्त्री-सुख से जातक को पृथक् रखेंगे और हम पर शनि की १० वीं दृष्टि है अत वन खण्डो की पद यात्रायें करायेंगे। निर्जन बीहड स्थानो मे वास करायेंगे। सूर्य और बुध का हम पर केन्द्रीय शासन है अत वन खण्डो और निर्जन स्थानो मे वास करते हुये भी आत्म-ज्ञान और आत्म दर्शन कराने की हमारी प्रतिज्ञायें हैं। राहु, गुरु की चन्द्र, कर्क राशि मे होने से कह रहे हैं कि चन्द्र मन का स्वामी है अत हम अपनी इच्छाओ की पूर्ति हेतु परिवर्तन लाकर मन को एकाग्र करके आत्म-दर्शन कराते हुये जनता के मन पर भी ऐसी अमिट छाप अंकित करेंगे जिससे प्राणिमात्र युगों-युगो तक याद करता रहे और जातक (भगवान महावीर) के चरण कमलो मे नत मस्तक होता रहे।

नवमे स्थान मे चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। नौवां स्थान धर्म तथा भाग्य स्थान है। पचम मे पचम होने से विद्या से परमोत्कृष्ट विद्या की ओर बढने का और अपनी सम्पूर्ण कलाओ से भाग्य स्थान मे स्थित होकर भाग्योन्नति कराने का सकेत दे रहा है। नौवें स्थान से भी नौवां स्थान पचम स्थान होता है। यह सकल्प तो प्रथम ही शुक्र जातक को परम सौभाग्यशाली-महाज्ञानी एव उच्च कोटि का धर्म धुरन्धर बनाने के लिये दृढ निश्चय कर चुका है।

चन्द्र मन का स्वामी है—चतुर्थ स्थान का कर्त्ता है। ऐसे चन्द्र को राहु और गुरु ने अपनी भावनायें समर्पित करके मन में त्याग और पृथकता, एकान्तवास, धर्म के मर्म की सच्ची

खोज करने के लिये दृढ़ निश्चयी बना दिया। चन्द्र में अमृत है। चन्द्र ने कन्या राशि में बैठ कर बुध को समस्त गुण प्रदान कर दिये और बुध ने सूर्य से योग बनाया अत: उस अमृत का स्वाद आत्मा को आया और उस अमृत को पान करने के उपरान्त सभी सांसारिक सुख और चमचमाती समस्त सम्पदायें हेय प्रतीत हुई और मन में एकाग्रता आने के पश्चात् सर्व ऋद्धि-सिद्धियों पर एकाधिकार हो गया। तथा संसार के समस्त सुखों का वियोग कराके मुक्ति रमा से नाता जुड़वा दिया।

ध्यान रहे कि केतु की नवम् दृष्टि चन्द्र पर है। केतु की इच्छा के विपरीत मुक्ति-मार्ग मिलना असंभव ही है। दशमें स्थान में शनि अपनी उच्च राशि तुला में स्थित है। शनि अपनी स्व राशि में या मूल त्रिकोण राशि में या उच्च राशि का होकर केन्द्र में हो तो 'शशक' नाम का योग बनता है।

'शशक' योग में जन्म लेने वाले जातक साधारण कुल में जन्म लेकर भी राज्य सिंहासन के अधिकारी होते हैं। उनकी सेवा के लिये प्रतिहारी नियुक्त रहते हैं। वह सरल स्वभाव और सौम्य मुद्रा धारी होता है तथा वह दिग्दिगन्त में भारी प्रशंसा का पात्र होता है।

शनि का प्रभाव नभ-मण्डल में सर्वोपरि है। दशम् स्थान से पिता का और निज कर्मों का विचार किया जाता है। दशवें स्थान की उच्च राशि में स्थित शनि पिता की यश: कीर्ति की महानता और प्रसिद्धि की सूचना दे रहा है। शनि कह रहा है—कि मैं दशवें स्थान में उच्च राशि के अन्तर्गत होकर उच्च कोटि के कर्म कराने की क्षमता एवं अधिकार सुरक्षित रखता हूँ अतएव उच्च कर्म कराके ऐसे पद पर पदारूढ़ कराऊँगा जहाँ पर पहुँचने का स्वप्न में भी विचार नहीं आया हो। शनि कह रहा है—कि मुझ में शुक्र को छोड़ कर समस्त ग्रहों की भावनायें विद्यमान हैं

और उसमे भी दो उच्च ग्रहों की भावनायें सुन्दर हैं। इसलिये मैं इस जातक को उच्च धर्म कराता हुआ आखिरी मंजिल की अन्तिम सीढी पर ले जाऊँगा। मुझमें मंगल और केतु के गुण होने से परम सुख और मोक्ष मे ले जाने योग्य पुरुषार्थ कराने का अधिकार प्राप्त है। सूर्य आत्मा है। मैं शरीर का स्वामी हूँ और दूसरे स्थान (धन) का लक्ष्मीपति हूँ। सूर्य आत्मेश है इस कारण से कायक्लेश पूर्वक भी आत्मा को परमात्मा बनाने का— निर्वाण पद पर पहुँचाने का तथा अपने (जातक के) कुटुम्ब को त्याग कराने का सम्पूर्ण अधिकार मुझे प्राप्त है। मैं दुख का कारण हूँ। मेरा नाम सुनकर बडे-बडे योद्धाओ एव शूरमाओं के पराक्रम नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जिस जातक पर मेरी कृपा हो जाती है उसकी कीर्ति भी अजर-अमर हो जाती है।

शनि कह रहा है कि मुझ पर उच्च के गुरु का और कर्क के राहु का केन्द्र मे शासन है। अत जातक के शरीर को धर्म के पथ पर चलने और वन-खण्ड—दुर्गम बीहड स्थानो—निर्जन वनो मे वास कराने की मेरी प्रतिज्ञा है। साथ ही वीतरागता पूर्वक मुक्ति धाम दिलाने की शक्ति मुझ मे विद्यमान है परन्तु मुझे अपने मित्र शुक्र से परामर्श करना है क्योंकि मेरी मकर और कुम्भ लग्नो मे शुक्र को कारकता का विशिष्ट अधिकार प्राप्त होता है और शुक्र की तुला और वृष लग्नो मे मुझे कारकता का अधिकार है। मैं स्वय तुला राशि के अन्तगत हूँ। उच्च पद प्राप्त हूँ अत अपने समस्त गुण और बल शुक्र को दे रहा हूँ क्योंकि मैं वृद्ध हूँ—मेरी गति मद है परन्तु अपने मित्र शुक्र को आज्ञा देता हूँ (लग्नेश होने से) कि तुम मे भोग सम्बन्धी सुख प्राप्त कराने के गुण बहुत होते हैं इसलिये भौतिक गुणो का त्याग कराके तप-त्याग पूर्वक ऐसी ऋद्धिसिद्धियाँ प्राप्त करना जिससे तीनो लोको मे भगवान महावीर स्वामी का नाम अजर-अमर

और प्रख्यात रहे तथा हमेशा उनकी पूजा-अर्चा-उपासना होती रहे।

आज २५०० सौ वर्षोपरान्त भी भगवान महावीर स्वामी के बतलाये हुए सन्मार्ग पर चल कर उनके अगणित असंख्य अनुयायी भक्त जन और श्रद्धालु जन उनका बारम्बार स्मरण करके उनके श्री चरणों में अपनी विनयाञ्जलियाँ सादर सस्नेह समर्पित करते हुए कभी नहीं अघाते।

जन्म लग्न फलितार्थ

महावीर श्री के चरणों में सादर समर्पित

विश्व का आधार

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी जी

एक ही व्यापक अहिंसा विश्व का आधार हो।
मित्रता के सूत्र में आबद्ध सब संसार हो॥
शान्ति-सुख की चाह जग में, कौन कब करता नहीं ?।
(पर) कल्पना के कौर भरने से उदर भरता नहीं॥
साध्य मिलता है तभी जब साधना साकार हो॥ एक०॥
वैर बढ़ता वैर से प्रतिशोध फिर होती घृणा।
होड़ जो शस्त्रास्त्र की है युद्ध को आमन्त्रणा॥
प्रेम का पथ जो निरापद क्यों नहीं स्वीकार हो॥ एक०॥
श्याम शिर से शेर डरता श्याम शिर फिर शेर से।
भय से भय शंका से शंका, बैर बढ़ता वैर से॥
नर मिले सब को अभय का एक आविष्कार हो॥ एक०॥
हो विचारों का अनाग्रह स्वाद यह 'स्याद्वाद' का।
और आचरणों में 'तुलसी' अन्त हो उन्माद का॥
भगवती देवी अहिंसा का अमर आभार हो॥ एक०॥

महावीराष्टक स्तोत्रम्

श्रीमान् पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य

(१)

य कल्याणकरो मतास्त्रिजगतो लोकश्च य सेवते।
येनाकारि मनोभवो गतमदो यन्मं भव शुष्यति॥
यस्मा मोहमहाभटोऽपि विगतो यस्य प्रिया मुक्तिभा।
यस्मिन्स्नेहगत स नो भवति च कान्ताकटाक्षाक्षत॥

(२)

यस्याधृष्यमत मत जनहित सद्धर्मपाणोपलम्।
नम्रीभूत-सुरेन्द्रवृन्द-मुकुटे पादच्छलात्समगतम्॥
भव्यैरप्यनुगीय-मान-यशसा व्याक्रान्तलोकत्रयम्।
यस्माद्योऽस्ति नयार्पणादघदनेकान्ताऽकटाक्षाऽक्षत॥

(३)

यस्य प्रेङ्खदखर्व-कान्तिमणिभि प्रोद्योलितामातता—
मास्थानावनिभागनैर्दिविरतै प्रक्रान्त—तूर्यंत्रिकाम्॥
तामालोक्य भवागभोगनिरता मिथ्यादृशोऽप्यादृता।
सम्यक्त्व विभव भवन्ति कुनयैकान्ताऽकटाक्षाऽक्षता॥

(४)

ये प्राक् क्षासमुपागता मतिहता वाण्या कृपाण्या परेऽ—
नीतिज्ञानलवोद्धता गतपयास्तत्त्वार्थके समरे॥
निक्षिप्ता सुनयप्रमाणभुवि ते चेतश्चमत्कारिणो।
येन ज्ञानममाहिता खलु कृता कान्ताकटाक्षाऽक्षता॥

(५)

यस्य प्रार्चन भक्तिचाञ्चितमना भेकोऽपि तत्कोपिना
दैवेन प्रहतोऽप्यभूदमरभू कान्ता कटाक्षाऽऽक्षता: ।।
तत् किं यस्य पदार्चने कृतधियः सामोदभावेन हि ।
जायन्ते भवयोषितां शिवरमा कान्ताः कटाक्षाऽक्षता: ।।

(६)

यस्याद्यं भ्रमरावलीव कमले भव्यावलीमन्दिरे ।
सम्फुल्लत्कमलावलीं परिकनद्दीपावलीं विन्दति ।।
चेतस्याप्त-मुदावलीति तु वरं चित्रं विचित्रं न्विद—
मेका कामवशाऽपरा भवति नो कान्ताकटाक्षाऽऽक्षता: ।।

(७)

वीरः सोऽस्तु मम प्रसन्न-मतये तं संगतोऽहं ततः ।
सूक्तं तेन हितं मतं जगदतो वीराय तस्मै नमः।।
अन्यो नास्ति ततः प्रियङ्कर इतस्तस्य स्मृतिर्मे हृदि ।
वीरे तत्र रतो भवान्ययमहं कान्ता कटाक्षाऽऽक्षत: ।।

(८)

वं-शौन्नत्य करोऽप्यसौ नरपतेः सिद्धार्थ कस्यात्मभूः ।
शी-लेनाधिकृता हितोऽपि तपसास्त्रेण प्रकृत् कर्मणाम् ।।
ध-न्यानामति विस्मयं विदधती पूर्वं तु पश्चात् प्रभो !
र-स्येयं कृतिरातनोतु कमनक् कान्ताऽकटाक्षाऽऽक्षत: ।।

—★—

दीप-अर्चना

(कविवर द्यानत जी)

करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की।

(१)

राग बिना सब जग-जन तारे, द्वेष बिना सब करम विदारे।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(२)

शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी, मन-वच-काय न कहिये योगी।
करौं आरती वर्द्धमान की पावापुर निरवान थान की॥

(३)

रत्नत्रय-निधि परिगह-हारी, ज्ञान-सुधा-भोजन-व्रतधारी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(४)

लोक अलोक व्याप निज माही, सुखमय इंद्रिय-सुख-दुख नाहीं।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(५)

पंच कल्याणक-पूज्य विरागी, विमल दिगम्बर अंबर त्यागी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की॥

(६)

गुन-मनि-भूषन-भूषितस्वामी, जगत उदास जगत्रय स्वामी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(७)

कहैं कहाँ लौं तुम सब जानौ, 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

महावीर-वन्दना

पंडित प्रवर अशाधरसूरि

सन्मति-जिनपं सरसिज-वदनं,
संजनिताखिल - कर्मक - मथनं ।
पद्म सरोवर मध्य—गजेन्द्रं,
पावापुरि महावीर जिनेन्द्रं ।।१।।
वीर भवोदधि—पारोत्तारं,
मुक्ति श्री वधु-नगर-विहारं ।
द्विर्द्वादशकं — तीर्थ पवित्रं,
जन्माभिपकृत — निर्मलगात्रं ।।२।।
वर्धमान नामाख्य-विशालं,
मान मान-लक्षण दश तालं ।
शत्रु विमथ न विकट भट-वीरं,
इष्टैश्वर्य धुरी कृत दूरं ।।३।।
कुण्डलपुरि सिद्धार्थ भूपाल—
तत्पत्नी प्रियकारिणि वालं ।
तत्कुल नलिन विकाशित हंसं,
घात पुरो घातिक विध्वसं ।।४।।
ज्ञान-दिवाकर लोकालोकम्—
निर्जित कर्मा-राति विशोकं ।
वालत्वे संयम सु - ग्रहीतं,
मोह महानल मथन विनीतं ।।५।।

मानवता के उद्धारक भगवान महावीर

आओ आओ सुनो कहानी मानवता उत्थान की।
सत्य-अहिंसा के अवतारी, महावीर भगवान की।

परिस्थिति

मानव-मानव मध्य बढ़ रही भेद भाव की खाई थी।
पशुओं में थी त्राहि त्राहि, हिंसा से भू थर्राई थी॥
धर्म नाम पर द्वेष दम्भ, आडम्बर की बन आई थी।
स्वार्थ, असत्य, अनैतिकता में, मानवता मुरझाई थी॥ आओ०

अवतरण

प्रान्त बिहार पुरी वैशाली, राजा थे सिद्धार्थ सुजान।
चैत सुदी तेरस को माता त्रिशला से उपजे गुणखान॥
श्री वृद्धि सर्वत्र हुई थी, जनता ने सुख पाये थे।
इससे जग में त्रिशला-नंदन वर्द्धमान कहलाये थे॥ आओ०
मदोन्मत्त हाथी के मद को, चूर 'वीर' पद प्राप्त किया।
दर्शन से शंकाये मिट गई, मुनि जन 'सन्मति' नाम दिया॥
तरु लिपटे विषधर को वश कर, महावीर कहलाये थे।
सर्व हितैषी शान्तवीर के, सब ने ही गुण गाये थे॥ आओ०

वैराग्य और ज्ञान प्राप्ति

भोग-रोग, सम्पद् विपत्ति है, जब यह भाव समाया था।
कामजयी ने तीस वर्ष में दीक्षा को अपनाया था॥
सर्व परिग्रह त्याग, वर्ष बारह, वन बीच बिताये थे।
मोहादिक कर नष्ट, सर्व ज्ञाता अरिहंत कहाये थे॥ आओ०

महावीरश्री का उपदेश

मानव बने महामानव, अब तीर्थंकर पद पाया था।
मानवता उद्धार हेतु, तब यह सन्देश सुनाया था।।

अहिंसा

"स्वयं जियो जीने दो सब को" इससे बढ़कर धर्म नहीं।
स्वार्थ हेतु पर को दुख देने से बढ़कर दुष्कर्म नहीं।। आओ०
मद्य-मांस अण्डा न कभी मानव भोजन हो सकता है।
शुद्ध निरामिष भोजन से बढ़ती सच्ची सात्विकता है।।
पर दुख-सुख को अपना समझो, प्राणि-साम्य मन में लाओ
इन्द्रिय-विषय-वासना तज, संयम-मय जीवन अपनाओ।। आओ०
यज्ञ-हवन-बलि-पूजन हित भी, प्राणि सताना हिंसा है।
झूठ बोल विश्वासघात कर, काम बनाना हिंसा है।।
चोरी ठगी शक्ति से धन हर, हृदय दुखाना हिंसा है।
कामुकता, अश्लील आचरण कलुष भावना हिंसा है।। आओ०

अपरिग्रह

संग्रह वृत्ति पाप है, इससे जनता वस्तु न पाती हैं।
कमी, छिपाव, अभाव, मिलावट, आराजकता छाती है।।
स्वयं वस्तुएँ परिमित रखकर औरों को भी जाने दो।
आवश्यक सामग्री पाकर, सबको काम चलाने दो।। आओ०

अनेकान्त

सभी वस्तुओं में अनेक गुण, जग में पाये जाते हैं।
भिन्न दृष्टि कोणों से जन, उनको कहकर बतलाते हैं।।
अतः पराये दृष्टि कोण पर, बन समुदार विचार करो।
पक्षपात तज, अनेकान्त मय पूर्ण सत्य स्वीकार करो।।

स्व-पुरुषार्थ

अपने जीवन का हर प्राणी, आप स्वयं निर्माता है।
जैसा करता, वैसा भरता, कोई न सुख-दुख दाता है॥
आत्म शक्ति से, बन्ध मुक्ति का श्रद्धामय पौरुष लाओ।
भौतिकता की चकाचौंध में आतम को मत बिसराओ॥ आओ०

परमात्मा-पद प्राप्ति

सभी आत्माएँ समान है, शक्ति रूप से भेद नहीं।
नर-नारक-पशु-देव, कर्मकृत योनि आत्म के भेद नहीं॥
तप से कर्म दूर कर, जो नर निर्विकार हो जाता है।
शुद्ध सिद्ध भगवान् जिनेन्द्र, प्रभु परमात्म कहलाता है॥

महा परि निर्वाण

तीस वर्ष उपदेश सुना, अगणित जीवों को ज्ञान दिया।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या, तन त्याग प्राप्त निर्वाण किया॥
ढाई हजार वर्ष से जन-मन वीर-चरण आराधक है।
महावीर सिद्धान्त पूर्णतः विश्व-शान्ति के साधक हैं॥ आओ०
रायचन्द जी ने बापू को वीर संदेश सुनाया था।
सत्य-अहिंसा से बापू ने हिन्द स्वतंत्र कराया था॥
उन्हीं वीर के आगे 'कौशल' सब मिल शीश झुकायें हम।
आत्म शक्ति को पहिचानें, सच्चे मानव बन जायें हम॥ आओ०

जिनकी

परमशांत सौम्यमुद्रा

भव्य जीवों के स्वानुभव में

अनुकूल निमित्त बनती है

तथा

जिनकी दिव्यध्वनि खिरती तो है

उनके वचन योग से

परन्तु

सौभाग्य जगाती है भव्य जीवों का

ऐसे

१००८ श्री वीर प्रभु के चरणों में

शत शत अभिनन्दन

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

नानकचन्द्र जैन एवं राकेशकुमार जैन

प्रोमपट ट्रांसपोर्टस

१२७२ वकीलपुरा देहली-११०००६

जिन्होंने

जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाकर

स्वयं भवसागर को पार किया

तथा

जो समस्त संसारी जीवों को पार कराने के लिए

सुदृढ नौका के समान

पवित्र माध्यम बने हुए हैं

ऐसे

महावीर स्वामी के चरणों में हमारा कोटि २ नमन

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

(१) मदनलाल जैन

४७१६ डिप्टीगंज

देहली-११०००६

(२) महावीर बैंगल स्टोर

४७३२, डिप्टीगंज

देहली-११०००६

जिन्होंने

परम. शुक्ल ध्यान की प्रचंड अग्नि से

कर्म काष्ठ को जलाकर भस्म कर दिया है

तथा

जिनके केवलज्ञान रूपी किरणों से समस्त लोकालोक

आलोकित हो रहा है

वे सर्वज्ञ भगवान महावीर

हमारे हृदय में ज्ञान की विमल ज्योति प्रकट करें

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

(१) **महावीर प्रसाद जैन**

मेनेजिंग डाइरेक्टर

एलाइड इलैक्ट्रिक एण्ड हार्डवेयर इन्ड्रस्ट्रीज (प्रा०) लि०

मोतीया खान, नई देहली-११००५५

फोन ५११७७२/५१७८३२

(२) राजस्थान इन्ड्रस्ट्रियल एण्ड सर्विस ब्यूरो,

इन्ड्रस्ट्रियल इस्टेट—जयपुर साउथ-३०२००१

फोन० ६४५८

जिनका जीवन

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र का

शरच्चन्द्र है

जिनकी मुक्ति

जगत के जीवो को सहस्ररश्मि बनकर

पथ प्रशस्त किया करती है

जिनकी

परम शान्त मुद्रा से वीतरागता झलकती है

उन सन्मति के

श्री चरणो मे कोटि कोटि है

नमन हमारा

परम पुनीत पच्चीसवे शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

प्रकाशचन्द समैया बजाज

मु० पो० कबरई (जिला हम्मीरपुर) उ० प्र०

त्रिशलानन्दन

के

चरणों में शत-शत वन्दन,

काट दिये हैं स्वयं जिन्होंने,

कर्म-जाल के दृढ़तम बन्धन,

जिनका जीवन।

गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मुक्ति का सुरभित चन्दन,

उनके ही इस रजत-शतक पर,

पंचम गति की प्राप्ति हेतु है,

मोक्ष लक्ष्मी का अभिनन्दन।

आओ घृत के दीप जलाएँ,

धरती पर अमृत बरसाएँ,

मिट जाये भव-भव का क्रन्दन,

महावीर हे त्रिशलानन्दन।

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

परमानंद लखमीचंद जैन सराफ

गौरमूर्ति—सागर (म० प्र०)

ज्योतिर्मय महावीर (पद्य काव्य

श्री रमेश सोनी मधुकर खुरई, (सागर) म० प्र०

(१)

पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।
मानवता के हृदय-गगन में, सूरज चमका ज्ञान का॥
पुण्य-दिवस के प्रथम प्रहर में, मेरा प्रथम प्रणाम लो।
दर्शन की प्यासी अँखियों का, बढ़ कर आँचल थाम लो॥

(२)

पद-रज धोने मचल पड़ी है, पलकों की ये निर्झरणी।
अक्षत पूजन करने निकली, श्वासों की पावन तरणी॥
हर तिनका वंशी सा गूंजा, फल था दया-निधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(३)

कुसुम-कुंज में नव निकुंज में, चित्रित है तेरी भाषा।
मौन लिपी से समझाई थी, दया धर्म की परिभाषा॥

अमृत-वचनों के अर्थों ने, दैन्य-दाह-तम दूर किया।
वेदों की हर मौन ऋचा को, वशीकरण सा मंत्र दिया॥
काल-भाल पर चमके ऐसे, तारा शुक्र वितान का॥
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(४)

पाप और पाखण्ड की ज्वाला, नाच रही थी हर घर में।
घृणा द्वेष की दुमुँही नागिन, जहर उगलती थी नर में॥
वीत गये दिन पक्ष मास के, वर्ष अनेकों बीत चले।
लालच-लिप्सा वनी कामिनी, दया धर्म घट रीत चले॥
एक तिलस्मी चमत्कार का, नाटक हुआ विधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(५)

तव ही त्रिशला की आँखों में, सोलह सपन शृंगार हुआ।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, महावीर अवतार हुआ॥
किन्नरियाँ गन्धर्व देव गण, हर्षित थे मन ही मन में।
राजा श्री सिद्धार्थ जनकवर, डूव गये सम्मोहन में॥
मात-पिता की गोद भर गई, सुख पाया सन्तान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(६)

रति अनग मोहित हो बैठे, चितवन पर किलकारी पर।
इन्द्राणी का तन-मन डोला, रुनझुन-रुनझुन ताली पर॥
रीझ गई केशर की क्यारी, खिली मजरी तानो पर।
सपने सब साकार हो गये, पुष्पक तीर कमानो पर॥
धर्म-ध्वजा ऐसी लहराई, बादल उड़े वितान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(७)

आल्हादित हो उठा हर्ष था, वशी के मधु स्वर गूजे।
मादक मनुहारो की धुन पर, गले मिले सब इव दूजे॥
पीके फूटे हरे प्यार के, मौसम ने रस बरसाया।
धरती के पाँवो मे घुघरू, पवन बाँध कर मुसकाया॥
खुशियाँ ऐसी डोल रही थी, ज्यो बेडा जलयान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(८)

कल्पवृक्ष ने फूल बिखेरे, स्वागत किया बहारो से।
नभ मे फाग सितारे खेले, उनके पलक इशारो से॥
किसी होठ पर बजी बसरी, किसी हाथ से बीन बजी।
चदन चर्चित कमल ज्योति से, हर दुल्हिन की माग सजी॥

महका गुंजन, झूमा नंदन, रस बरसा मधुपान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(९)

कंगना खनके बिंदिया दमके, सुध-बुध भूली तरुणाई।
मगन हुआ आनन्द द्वार पर, भटक रही थी अरुणाई॥
सजी दूधिया राहें जगमग, चमका ज्यों नभ का दर्पन।
बिखरी बूँदें काँच सरीखी, चकराया था अपनापन॥
बजी नौबतें शुभ शहनाई, मौसम आया दान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१०)

श्रद्धा के पावन पनघट पर, यश की राधा मुस्काई।
हिरनी सी भोली पलकों पर, स्वयं कल्पना भरमाई॥
मंगल शब्द गीत शहनाई, गूंज उठा स्वर नारों का।
जैसे बचपन लौट पड़ा हो, खुशियों का त्योहारों का॥
मंत्र मुग्ध हो गईं दिशायें, जादू था मुस्कान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(११)

ऋतुओं ने अभिषेक किया, सावन ने झूले डाल दिये।
चंदा पलने में आ बैठा, रवि ने झूमर बाँध दिये॥

मलय-पवन दासी बन आई, मणि मन्दिर सिरहाने की।
मंगल-कलश रखा सखियों ने, लोरी गाई सुलाने की॥
फूली मेंहदी, हँसी चंपा, पौधा गाये धान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१२)

पलक बनी पूजा की थाली, हर आँचल पुचकार उठा।
ममता झलक पड़ी आँखों में, त्रिभुवन का सब प्यार लुटा॥
कजरी गाती, रस झलकाती, करुणा द्वारे तक आई।
दर्शन की प्यासी अभिलाषा, छंद वंदना के लाई॥
तूफानों में दीप जला फिर, मानव के उत्थान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१३)

खग वृन्दों ने छेड़ी सरगम, पत्र हिला सम्मान किया।
पुष्पों से लद गईं लतायें, जड़-चेतन ने ध्यान किया॥
झिलमिल कुमकुम थाल सजाकर, किरन कामिनी मुस्काई।
हर उमंग झूला सी झूली, हवा हिमानी गदराई॥
वरदानी हाथों से मिलता, फल गंगा स्नान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१४)

झरनों सी साँसें लहराईं, नशा चढ़ा था जन-जन में।
इन्द्र स्वयं हर्षित हो बैठे, हीरे वरसे आँगन में॥
मान सरोवर सोहर गाती, कलकल की स्वर लहरी में।
मुखड़े ऐसे दमक रहे थे, शीशा ज्यों दोपहरी में॥
तेज देखकर थम जाता था, चढ़ता सूर्य विहान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१५)

भू ने माथा रखा पगों पर, अम्वर ने की आरती।
चौक पुरे हर देहरी आँगन, धन्य हो गई भारती॥
सागर की नव वधुएँ सजकर, चरण चूमने को आई।
शैल हिमालय की वेटी फिर, दूध धुला दर्पण लाई॥
सव से अच्छा कोहनूर था, वह हीरे की खान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१६)

मदोन्मत्त हाथी था जिनका, एक खिलौना वचपन का।
तक्षक नाग किया वश में था, खेल हुआ था छुटपन का॥

क्षमा-दया और सत्य अहिंसा, थी जिनकी मीठी बोली।
जियो और जीने दो सबको, सूरत कहती थी भोली॥
पियु पियु के स्वर गूंजे फिर, मन पिघला चट्टान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१७)

कमनीय कला की मूरत बन, वैभव की मणियाँ बिखराई।
गायक के स्वर-सधानों मे, पचम रस बन लहराई॥
मृदुल-भुजाओ की गगा मे, करुणा रोज नहाती थी।
जिनके चरणो की धूली से, छल-छाया घबराती थी॥
बिना कहे ओठो पर आता, शब्द शब्द आख्यान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१८)

शब्द मत्र बनकर बिखरे फिर, नगर डगर हर भावो मे।
धर्म-अहिंसा का लहराया, ज्यो कदव की छाओ मे॥
ऐसा फूल बना मधुवन का, महक उठी हर फुलवारी।
सोलह स्वर्ग निछावर होते, ऐसी सूरत थी प्यारी॥
जैसे सुमन खिला धरती पर, सुर पुर के उद्यान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१९)

तन के राजकुमार सलौने, मन के वे संन्यासी थे।
जीवन में मानवता बिखरी, घट घट के वे वासी थे॥
वे भोगी कैसे वन जाते, योगी बन कर आये थे।
तीस वर्ष की आयू में ही, वीतराग गुण गाये थे॥
मानवता की रक्षा करने, हाथ उठा वरदान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२०)

जिधर बढ़े थे चरण आपके, शवनम अर्घ्य चढ़ाती थी।
साधें अमर सुहागिन वनकर, नई ज्योति दिखलाती थीं॥
रूप रंग की रजनी गंधा, जीवन-कला सिखाती थी।
मोक्ष ज्ञान की दर्शन लीला, अर्थों में समझाती थी॥
मंगल चरण चमकते ऐसे, ज्यों पल्लव विरवान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२१)

प्रेम सत्य है जग-जीवन का, मुनियों को यह ज्ञान दिया।
अमर आत्मा देह वस्त्र है, श्रद्धा का सम्मान किया॥
जिनकी त्याग: तपस्या छूकर, चकित हुआ था ध्रुव-तारा।
जिनकी पावनता को लेकर, शरमाई गंगा - धारा॥

जिनके पलक इशारों मे ही, शीश झुका अभिमान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२२)

कठिन तपस्या बारह वर्षी, दिव्य सुधा-रस भर लाई।
बीत गये ब्यालीस वर्ष जब, ज्ञान ज्योति दौडी आई॥
कर्मवाद और साम्यवाद का, हँस कर रिश्ता जोड दिया।
आकिंचन्य दिया दुनिया को, जग से मुखडा मोड लिया॥
कला-कीर्ति की वीणा पर था, मिटा तिमिर अज्ञान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२३)

सत्य और शिव को लेकर, सुन्दर स्वर्णिम कलश गढे।
वीतरागता के मम्बल मे, स्याद्वाद के वचन पढे॥
उज्ज्वल शीतल शात मधुर, चिन्तन दर्शन को दिखलाया।
आदि अन्त की भूल मिटाकर, प्रतिशोधो को ठुकराया॥
काम-क्रोध का पहरा टूटा, सुख जाना सम्मान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२४)

वैशाली गणतन्त्र मध्य मे, भाग्य जगे कुड ग्राम के।
घर बैठे ही चरण मिल गये, उनको तीरथ धाम के॥

वदल दिया इतिहास धरा का, महाकाल का वल रोका।
नफरत की काली आंधी फिर, दे न सकी जग को धोखा ॥
चुटकी-भर शक्ती को लेकर, रथ निकला विज्ञान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

(२५)

भूखण्ड विछा आकाश ओढ़, अक्षर के दीपक जला गये।
दीपावलि को पावा पुर में, ज्ञान ज्योति में समा गये ॥
हुई कृतार्थ भूमि भारत की, इनकी परछाई छूकर।
अक्षय अटल अमर होगा वह, इनके वचनामृत सुन कर ॥
शंख नाद में स्वर गूंजेगा, उनके गौरव गान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

(२६)

तेरी छवि-छाया हिल मिल कर, प्राणों में चुभ-चुभ जाती।
मुखरित कण्ठों की मणिमाला, हृदय-हार वन लहराती ॥
जीवित रहे धरा पर प्राणी, ऐसा शब्द शृङ्गार किया।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से, जन हित का उद्धार किया ॥
दीनों का रखवाला था वह, साथी था अनजान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

वैशाली

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

ओ भारत की भूमि वन्दिनी ! ओ जंजीरों वाली !
तेरी ही क्या कुक्षि फाडकर जन्मी थी वैशाली !
वैशाली ! इतिहास-पृष्ठ पर अंकन अंगारों का ।
वैशाली ! अतीत गह्वर में गुंजन तलवारों का ।।
वैशाली ! जन का प्रतिपालक, गण का आदि विधाता ।
जिसे ढूंढता देश आज उस प्रजातन्त्र की माता ।।
रुको, एक क्षण पथिक ! यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ ।
राज सिद्धियों की समाधि पर फूल चढाते जाओ ।।
डूबा है दिनमान इसी खंडहर में डूबी राका ।
छिपी हुई है यही कहीं धूलों में राज-पताका ।।
ढूंढो उसे, जगाओ उनको जिनकी ध्वजा गिरी है ।
जिनके सोजाने से सिर पर काली घटा घिरी है ।।
कहो, जगाती है उनको वन्दिनी बेडियों वाली ।
नहीं उठे वे तो न बचेगी किसी तरह वैशाली ।।

× × ×

फिर आते जागरण-गीत टकरा अतीत गह्वर में ।
उठती है आवाज एक वैशाली के खंडहर से ।।
करना हो साकार स्वप्न को तो बलिदान चढाओ ।
ज्योति चाहते हो तो पहले अपनी शिखा जलाओ ।।
जिस दिन एक ज्वलन्त पुरुष तुम में से बढ जायेगा ।
एक एक कण इस खंडहर का जीवित हो जायेगा ।।
किसी जागरण की प्रत्याशा में हम पडे हुए हैं ।
लिच्छवि नहीं मरे, जीवित मानव ही मरे हुए हैं ।।

वीर-वैभव

श्री लक्ष्मीनारायण जी 'उपेन्द्र'
खुरई (सागर) म० प्र०

१

अति पुण्य भूमि भारत वसुधा, उसमें कुंडलपुर वैशाली।
दैदीप्यमान हो उठी स्वयं, थे क्योंकि वीर प्रतिभाशाली ॥
माता त्रिशला सिद्धार्थ पिता, हर्षित जग का हर प्राणी है।
जन्मावतार की मंगलमय, वेला सचमुच कल्याणी है ॥
चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी, जन्मोत्सव राजकुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है स्वाँग मिटा संसार का ॥

२

श्री वृद्धिगत देख पिता ने, वर्द्धमान शुभ नाम दिया।
तीर्थंकर अवतार जान कर, इन्द्रों ने अति नृत्य किया ॥
ऐरावत गज पर समासीन, कर पांडुक पर पधराया है।
अभिषेक वीर का देख देख, जन जन का मन हरषाया है ॥
था दोज चन्द्र सा वर्द्धमान, सत् रूप ज्ञान सुकुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वांग मिटा संसार का ॥

३

कंचनवर्णी स्वर्णिम काया, आकर्षक थी रूपच्छाया।
सुर पतिने नयन हजारों कर, देखा शिशु को न अघा पाया ॥
आत्म-ज्ञान सम्पन्न विवेकी, मेधावी वे बालक थे।
भय तो भयभीत रहा उनसे, वे स्वतः शौर्य के पालक थे ॥

सच पूंछो तो समय आगया जीवो के उद्धार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वांग मिटा ससार का ॥

४

प्रत्युत्पन्न बुद्धि बालक की, वीरोचित क्रीडाएँ थी।
एक बार का हाल सुनायें, जिसकी बहु चर्चायें थी ॥
खेल खेल मे वर्द्धमान भी, समवयस्क सह वृक्ष चढे।
नागराज भी उसी वृक्ष पर, आकर तब ही लिपट पडे ॥
फण पर पग रख उतर पडे पर असर नही फुकार का
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का

५

निर्मद हो पथ बदल लिये, थे जहरीले उद्‌गारों ने।
हर्षित हो जय बोली मिलकर, साथी राजकुमारो ने ॥
इसी तरह जब एक बार, गजराज हुआ मतवाला था।
गजशाला को तोड-फोड, विप्लव प्रचड कर डाला था ॥
सभी लोग घबडा कर भागे, धैर्य अटूट कुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का ॥

६

धीर प्रशान्त वीर सन्मति का, था सुयुक्ति से मन टकित।
क्लिष्ट समस्याओ का हल वे, कर देते थे नि शकित ॥
श्री वर्द्धमान की प्रतिभा भी, दिन दूनी रात चौगुनी हुई।
या प्रश्नो की बौछार स्वयं, उत्तर की सिद्ध लेखनी हुई ॥
शकाएँ सब समाधान थी प्रश्न न अस्वीकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का ॥

७

ज्यों ज्यो किशोर अति वीर हुए, त्यों चिंतन प्रिय होते जाते।
पटु तर्क शास्त्री भी उनके, तर्कों को सुनकर सकुचाते ॥

अवलोक ज्ञानमत्ता उनकी, जिज्ञासु तत्त्व चकरा जाते।
तत्त्वों की व्याख्या सुन सुन कर, अपने को शिष्य बना पाते ।।
निराकार आत्मा संबल थी, उनकी देहाकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ।।

८

हाँ! समवयस्क ने एक बार, माँ से पूछा "श्री वर्द्धमान"।
हैं कहाँ ? शीघ्र उत्तर पाया, उत्तर मंजिल पर विद्यमान ।।
जब ऊपर जाकर देखा तो, फिर वहाँ नहीं उनको पाया।
तत्रस्थित पितु श्री से पूछा, उनसे तब नीचे बतलाया ।।
ऊपर नीचे पता नहीं था असमंजस के द्वार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ।।

९

साथी बोला तुम कहाँ छिपे ? चिंतन की मुद्रा में बैठे।
सातों मंजिल में खोजा पर, तुम किस मंजिल में स्थित थे ?
मां से पूछा क्यों नहीं मित्र ? यों वर्द्धमान से प्रश्न किया।
साथी ने उत्तर दिया तभी इस पूछताँछ ने भुला दिया ।।
अर्थ न कुछ भी ज्ञात हुआ, ऊपर नीचे व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ।।

१०

तब वर्द्धमान ने कहा मित्र, हैं दोनों ही के कथ्य सत्य।
माँ से ऊपर पितु से नीचे 'सापेक्षतया है यही तथ्य ।।
यदि वीर चाहते तो उदात्त, क्षत्रिय राजा बन सकते थे।
जनता पर शासन कर विलास, भोगों में भी रम सकते थे ।।
आनन्द अतीन्द्रिय खोजी को है समय न उपसंहार का।
आनंदित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ।।

११

वह युग हिंसामय बना हुआ, था धर्मनाम बदनाम बहुत।
पशुबलि नरमेधों को करना, ही यज्ञो का था काम बहुत॥
धर्मों के ठेकेदार सभी सुरपुर का टिकट बाटते थे।
हिंसा के ताण्डव नृत्य सत्य, का मिलकर गला काटते थे॥
वातावरण बनाया जिसने शांति अहिंसा प्यार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

१२

हो जाए अहिंसायुक्त विश्व, है सन्मति का सदेश यही।
तज मोह राग द्वेषादिक को, धारे विराग मय वेष सही॥
अतएव त्याग गृहस्थावस्था, वे ज्योति पुज के रूप बने।
निज शान्ति अहिंसा के सुन्दर तम सत्य शिव अनूप बने॥
माया मोह न रोक सका था उनको घर परिवार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

१३

यौवन ने पाँसे फेंके थे, रगीनी के अल्हडता के।
पर पाँव फिसलते भी कैसे, उन महावीर की दृढ़ता के॥
बधन की तोडी बाधाएँ, छोडी सब ही रगरेलिया।
इन्द्रिय निग्रह के निश्चय मे, वे भूल गये अठखेलिया॥
नही मुक्ति श्री अभिलाषी को कार्य प्रणय व्यापार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा ससार का॥

१४

आत्म तत्त्व की सत्य खोज मे, तीस बसत व्यतीत हुए।
सभी लोक, व्यवहार जगत के नश्वर उन्हे प्रतीत हुए॥
नग्न, दिगम्बर हो निर्जन मे, आत्म-साधना रत रहते।
वे मौन विवेकी रह करके, उपसर्ग परीषह सब सहते॥

वाहों का तकिया था उनका, चादर गगनाधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

१६

आत्म चिंतवन मुख्य ध्येय था न्हवन और दन्तौन विहीन।
शीत ग्रीष्म वर्षादिक ऋतुएँ करती उन्हें अधिक तल्लीन ॥
सहज सौम्य स्वाभाविकता का, वन पशुओं पर पड़ा प्रभाव।
परम अहिंसक तप ने पूरे जन्म जन्म वैरों के घाव ॥
था वना तपोवन शेर-गाय सव के स्वच्छंद विहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

१६

कभी कदाचित् भोजनार्थ वे, दृढ़ प्रतिज्ञ ईर्या-पथ से।
चल कर खड़े खड़े कर लेते, शुद्धाहार महाव्रत से ॥
थी दासी एक अभागिन सी, जो कर्मो के फल भोग रही।
जनक और जननी वियोग में, जेलों में दिन काट रही ॥
नाम सुपरिचित चंदनवाला चेटक सुता दुलार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

१७

था दोष यही केवल उसका, थी रूप रंग में रमावती।
स्वामिनि थी उसकी वदसूरत, चंदन दासी थी रूपमती ॥
प्रभु महाश्रमण श्री महावीर ने उसके घरआहार लिया।
उस चन्दनवाला सी पतिता का युग युग को उद्धार किया ॥
था द्वादश तप द्वादश वर्षी, दृढ़ निश्चय के व्यवहारका।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

१८

शुभ वयस् व्यालिस होने पर, वे वीतराग सर्वज्ञ बने।
कर राग-द्वेष पर विजय प्राप्त, वे सच्चे स्थित प्रज्ञ बने ॥

जभिया ग्राम तट ऋजुकला, पर ज्यों ही वे ध्यानस्थ हुए।
त्यों शाल वृक्ष के नीचे वे केवल ज्ञानी आत्मस्थ हुए॥
वैशाखी शुक्ला दशमी का था धन्य दिवस जयकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

१९

वे पूर्ण वीतरागी होने से, जिनवर श्री अरिहन्त हुए।
तीर्थङ्कर पुण्योदयी प्रकृति, से समवशरण भगवत हुए॥
तत्त्वोपदेश भूमडल मे देते थे चरण विहारी वे।
नय अनेकान्त को समझाते थे रत्नत्रय के धारी वे॥
था समवशरण मे गूज रहा जति दिव्यनाद ॐकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

२०

प्रारभ हुए धर्मोपदेश कल्याणमयी सर्वोदय के।
वाणी को सुनकर सभी जीव, थे आतुर निज ज्ञानोदय के॥
षड् द्रव्य सप्त हैं तत्त्व यहा उनमे आत्मा को पहिचानो।
उसमे ही रमना मोक्ष अमर पहिले उसको मानो जानो॥
है धर्म एक पर निर्देशन होता है विविध प्रकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

२१

पर्याय बदलती रहती है, क्षण क्षण उत्पन्न नई होती।
मिलती न कभी भी आपस मे प्रत्युत् अतीत मे ही खोती॥
मत देखो गत पर्यायो को, सोचो मत भावी पर्यायें।
हैं स्वय अरे परिपूर्ण द्रव्य, स्वाधीन सहज सब आत्मायें॥
है द्रव्य यथावत् स्वाभाविक, वैभाविक विविध प्रकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

२२

उसको ही ज्यों का त्यों देखो, जानो मानो वस टिके रहो।
जो वर्तमान सो वर्द्धमान वस इसी प्राप्ति हित बिके रहो॥
जिस तरह यहां पर वहुरूपिया, निज वसन त्याग कर स्वांग धरे।
उस तरह आत्मा तन तज कर कर्मानुसार भव भ्रमण करे॥
है मोक्ष मार्ग सम्यग्दर्शन ही सम्यक्ज्ञानाचार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२३

इस देह त्याग से सुनो अरे यह नश्वर तन मिट जाता है।
मोही चेतन के साथ-साथ वस पुण्य-पाप ही जाता है॥
चौरासी लक्ष योनियों में यह आत्मा चलनी बनी रही।
फ़िर जन्म-मरण के चक्कर में चारों गतियों में सनी रही॥
यदि वात गुनो मेरे भक्तों, तो नाम न लो संसार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२४

है यह अनादि से स्वयं सिद्ध, इसका न कोई निर्माता है।
है विश्व रचयिता स्वयं अज्ञ, ज्ञाता तो इसे मिटाता है॥
यदि सचमुच ही सच्चे सुख के, तुम बने हुए अभिलाषी हो।
तो छोड़ो लौकिक सुखाभास, तुम निजानन्द अविनाशी हो।
इस गुण समुद्र अपने चेतन में लय हो क्षणिक विकार का॥
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२५

इस प्रकार श्री वीर प्रभू ने, स्वातन्त्र्य मन्त्र उद्घोष किया।
साम्यवाद के साथ साथ ही, रत्नत्रय का कोष दिया॥
निर्वाण काल आया प्रभु का, तव पावन पर्व प्रसिद्ध हुए।
फिर अष्ट कर्म कर नष्ट वीर, अर्हत् से शिव सुख सिद्ध हुए॥

यो वर्ष बहत्तर रहे बताते पथ निश्चय व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२६

शुभ दीपावलि का दिन पावन, निर्वाण दिवस पावापुर में।
सम्पन्न हुआ देवो द्वारा हम दीप जलाते घर-घर में॥
है हुआ हमारा विरह काल ढाई हजार इन वर्षों का।
पर अब सुयोग मिल पाया है, हमको अपने उत्कर्षों का॥
यह युग युग अमर रहेगा मंगल गायन धर्माधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२७

मुझ मे तो किंचित् शक्ति नही पर भाव भक्ति से आये है।
जिनवर से दृष्टि सुदृष्टि हुई अतएव वीर गुण गाये हैं॥

—०—

समन्वय

निश्चय की मंजिल पाने को—
सतो ने जो पथ बनाया।
निश्चयाग्र व्यवहार्य कार्य—
वह व्यावहारिक मार्ग कहाया॥

मत लडो पकड कर एक पक्ष—
यह जैन धर्म समझौता है।
हम बनें समन्वयवादी अब—
यह अनेकान्त का न्योता है॥

—x—

उद्बोधन

श्री डा० रामकुमार जी जैन
एम० बी० बी० एस खुरई

तव चरणों की बाट जोहता, धरती का हर छोर रे।
तप्त-धरा के तृषित कणों पर, बरस पड़ो घनघोर रे॥
ताल-तलैयों के अधरों पर प्यास रे!
शोक मनाती देखो नदी उदास रे!!
प्यासे पंछी की आँखों में सांस तोड़ती आस रे!
सूखे पनघट के घाटों पर वीरानों का वास रे!!
पी. पी. पी रट रहा पपीहा प्यासा वन का मोर रे!!!

हो, ममता के रक्षक तुम, हो सुहाग के रखवारे!
वीतराग तुम वैरागी तुम, पर स्वारथ के मनवारे!!
बूढो की लाठी हो तुम, नयन हीन के नयना रे!
बधिर जनो के कान तुम्ही हो गूंगों के तुम वयना रे!!
क्रूर काल के द्वार मचादे, नए जन को शोर रे!!!

चमक तडित सम 'पीर-मेघ' को चीर रे!
अपने उर मे ले-सोख धरा की पीर रे!!
अपनी छाती पर रोक काल के तीर रे!
जीवन के द्वारे पर खींचो युग की लखन लकीर रे!!
'जीवन-सीता' हर न पाये, छलिया रावण चोर रे!!!

घोर निराशा के तम मे तूं आशा ज्योति जगाता चल!
"मौतो के गलियारे" मे तूं जीवन-गीत सुनाता चल!!
हर बुझते जीवन-दीपक की, बाती को उकसाता चल!
हर जीवन पथ भ्रष्ट पथिक को, सम्यक् राह सुझाता चल!!
'यम के पाशो' घुटती-साँसो का मुसका हर पोर रे!!!

लोभों के व्यूहो मे फँस कर, अपनी राह न खोना रे!
सोने की जगमग मे चुंधिया अपनी आन न खोना रे!!
सुख के बिरवा रोपन हारे, विष के बीज न बोना रे!
जीवन-ज्योति जगाने वाले, तम के गेह न सोना रे!!
सोयी धरती के पूरब मे, चमको बन कर भोर रे!!!

तव चरणों की बाट जोहता धरती का हर छोर रे!
तप्त धरा के तृषित कणों पर, बरस पडो घनघोर रे!!

वे महान थे वर्द्धमान थे

श्री शीलचन्द्र जी चौधरी 'शील'
खुरई (सागर) म० प्र०

सन्मति का व्यक्तित्व काल क्या कभी बाँध सकता है ?
महावीर का चिंतन जग की परिधि लाँघ सकता है।
यावच्चन्द्र दिवाकर नभ में ज्ञानालोक विखरता।
उनसे प्रति विम्बित होकर ही कवि का भाव निखरता ।।१।।

वर्ग विहीन सृष्टि मानव की महावीर दिखलाते।
अर्थनीति की मर्यादा को आवश्यक बतलाते।।
यह युग-युग का चिन्तन एवं निष्कर्षो का मंथन।
सत्येश्वर का सोना है जो सर्वोदय का कंचन ।।२।।

जाने में या अनजाने में महावीर का चिन्तन।
विश्व निकट लाया करता आचार-विचारों का प्रण ।।
यह आचार संहिता उनकी स्वयं सफल होती है।
जो तिर्यंच नर नरकासुर के पाप सकल धोती है ।।३।।

सत्यमूर्ति थे ज्ञानमूर्ति थे, पौरुष भी वे मूर्तिमान थे।
वे सन्मति थे महावीर थे, तीन लोक मे वे महान थे॥
कालजयी थे अत स्वय ही, भूत भविष्यन् वर्तमान थे।
हीयमान को वर्द्धमान करने वाले वे वर्द्धमान थे॥४॥

—०—

दर्शन-वोध

श्री मदन श्रीवास्तव
सन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया (खुरई) म० प्र०

सलिल की वूद
मिल कर
जिस जगह
वन जाती है मोती,
वही स्थल
इस सद्उद्देश्य
का आरम्भ है
सभी दर्शन
जहाँ जुड जाते हैं,
दर्शन से जीवन के
महत्तम
जैन दर्शन का
वही स्तम्भ है।
हो जिसमे वीरता
ससार मे वह
वीर है
पर अहिंसा
सत्य-शिव-सौन्दर्य
का जिसमे
समन्वय हो
वह नि सन्देह
जग स्तुत्य

महावीर है

—०—

मेरा नमन स्वीकार हो

श्री नारायण 'परदेशी' सम्पादक 'बुजन'
पो० बा० नं० ६ खुरई (जिला सागर) म० प्र०

करुणा के 'नीरद'
महावीर ने—
मानवता को, दुराचार की ज्वाला में धधकते देख !
सांसारिक—सुखों का 'परित्याग' कर !!
व्याप्त-दुराचार उन्मूलन के लिए—
जीवन-बलिदान की प्रतिज्ञा कर,
त्याग के मार्ग पर !?

क्षमता का 'कवच' पहिने ?
आत्मबल की 'लगाम' पकड़ें ??
विश्वास के 'अश्व' पर सवार हो,
जगत के 'प्रहारों' को 'वक्ष' दिखा—
मंजिल की ओर 'प्रस्थान' किया ??

सतत् बढ़ते रहे
मनन् करते रहे
सुखों का, दुखों का
जनम का, मरण का
भव-मोक्ष, मार्ग का

अन्त मे—
बारह वर्षो के, 'अन्धकार' को !
तपस्या के 'अवा' मे,
तपा डाला,—तन के 'तम' को !!

कुन्दन बनकर,
चकाचौंध किया 'अन्धकार' को !
सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम की—मसालो मे,
प्रकाशित किया, दिशाओ को !!

मोक्ष का 'लोभ' दिखा !
मोक्ष का—'मार्ग' दिखा !!
मानवता का 'पाठ' सिखा !
'अमर—ज्योति'
'अमर—मजिल' पाकर—
अमर किया—नाम को
हे !—"अमन"
मेरा—नमन,—स्वीकार हो !!

नमन

सिद्धो का चैतन्य नग्न है—
कर्म-पटल से निरावरण ।
अरिहतो का तन-मन नगा—
गगा से ज्यादा पावन ॥
हैं निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनित्रय—
नग्न सर्वथा आकिञ्चन ।
इन्ही पच परमेष्ठि गणो के—
श्री चरणो मे करूँ नमन ॥

भ० महावीर के भक्तों के प्रति

श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट 'बागी'
खुरई (सागर) म० प्र०

मैं जगती का जीव अकिंचन।
महा अपावन भ्रष्ट स्वभावी॥
हे सन्मति ! सब भक्त तुम्हारे।
हुए वीर एवं मेधावी॥ १॥

भक्त वही जो जिन वाणी को।
वाणी में—जीवन में ढाले॥
उपदेशों के पहिले खुद ही।
उनको निज कृत्यों में पाले॥ २॥

जियो और जीने दो स्वर के।
वीतराग मय शाश्वत पथ पर॥
निर्विकार व्यापार रहित जो।
वनें आत्म-हित नग्न दिगम्बर॥ ३॥

कमल कीच सदृश्य आत्मा।
लिप्त नहीं है जड़ शरीर से॥
महावीर हे भक्त आप के।
दृश्यमान हों नीर-क्षीर से॥ ४॥

—०—

त्रिशला माँ की लोरी

(लोक-गीत)

कवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' खुरई

तूं तो सोजा वारे वीर, तूं तो सोजा प्यारे वीर।
वीर की बलइयाँ लेती मोद की प्राचीर॥
तूं तो सोजा वारे वीर ? तूं तो सोजा प्यारे वीर।
तुझे झुलाऊं पालना में, तुझे खिलाऊं गोद॥
तुझे सुलाऊँ कैसे ? तूं तो जागृत आतम बोध।
तूं तो चेतन की तस्वीर, तूं तो सन्मति की तस्वीर॥
तस्वीर की गलबहियां लेती इन्द्रो की जागीर
तूं तो सोजा प्यारे वीर, तूं तो सोजा वारे वीर।
काहे का है पालना ? काहे की डारी डोर।
घडी घडी जे वीरा पुलकें, होकर आत्म-विभोर॥
जिन्हो का है वज्राङ्ग शरीर, जिन्हो की रग-रग मे है क्षीर।
क्षीर में किल्लोलें करता करुणा रस गंभीर।
तूं तो सोजा वारे वीर ? तूं तो सोजा प्यारे वीर।
रत्नत्रय का पालना है वीतराग की डोर।
सत्य अहिंसा के झूले में हिंसा को झकझोर॥
तूं तो धरम धुरंधर धीर, सचमुच नगन दिगम्बर वीर।
वीर की बलइयाँ लेती, शिव की मलय-समीर।
तूं तो सोजा वारे वीर तूं तो सोजा प्यारे वीर॥

—०—

श्री महावीर स्तुति

श्री सिंघई देवेन्द्रकुमार जी जयंत खुरई

मिल के गायें अपन, वीरा प्रभु के भजन, श्रावक सारे।
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

निश दिन तुम को भजें, पाप पाँचों तजें।
कर दया रे, पातकी को लगा दो किनारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

नंद सिद्धार्थ के प्राण प्यारे, मातु त्रिशला की आँखों के तारे।
राज्य-वैभव तजा, नग्न वाना सजा, संयम धारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

रुद्र ने घोर उपसर्ग ढाया, देवियों ने प्रभू को रिझाया।
किन्तु डोले नहीं, बैन बोले नही तप सम्हारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

राग की आग में जल रहे हैं, चाह की राह में चल रहे हैं।
भ्रष्ट आचार हैं, दुष्ट व्यवहार हैं, बे सहारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

मन को ऐसे मैं कब तक रमाऊँ, कौन विधि से तुम्हें नाथ ध्याऊँ।
जयन्त व्याकुल भया, चैन सारा गया, आए द्वारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे॥

—o—

जडता से चैतन्य की ओर

रचयिता रमेश रावत 'रंजन' खुरई (म० प्र०)

कुण्डग्राम की जन्मभूमि ने,
भारत माँ को धन्य किया।
त्रिशलानन्दन ने कण-कण को,
जडता से चैतन्य किया ॥१॥
जन्म जात इस अनासक्त ने,
जीवन को एकान्त किया।
पूर्ण वीतरागी बन करके,
अनेकान्त उपदेश दिया ॥२॥
पावापुर निर्वाण भूमि से,
स्वयं सिद्ध पद प्राप्त किया।
ज्ञानालोक बिखेरा एव
मिथ्या तिमिर समाप्त किया ॥३॥

—x—

मुक्तक

राग रंग में लिप्त आत्मा, कहलाती संसारी।
पराधीनताओं से जकडी हुई लोक व्यवहारी ॥
किन्तु वीर ने स्वावलंबमय श्रद्धा ज्ञान चरित्र बनाया।
इसीलिए उनके चरणों पर तीनों लोकों की बलिहारी ॥
—डा० जुगलकिशोर गुप्ता 'युगल'

बढ़ने का बल पाया है

प्रीतमसिंह 'प्रीतम' शुक्ला घाड खुरई

अनदेखी है मंजिल मेरी, वीर-प्रभू का साया है।
साया से ही उर में मैंने, बढ़ने का बल पाया है ।।

वढ़ना ही जीवन है मेरा
फूल खिलें, या पथ में कांटे
चाहे मौसम साथ रहे या—
चाहे तूफानों के चांटे।

कैसा भी मौसम हो, लेकिन मैंने कदम बढ़ाया है।
कदम-कदम पर कदमों में भी जोश हमेशा पाया है ।।

दुनियां के कलख को जाना—
मैंने अपना ही पथ-दर्शन।
भूतकाल है जीवन-दर्पण—
आने वाले का अभिनन्दन ।।

जब-जब भी की गलती मैंने, तब-तब शीश झुकाया है।
वर्तमान के शुभ कर्मों से, जीने का बल पाया है ।।
अनदेखी है मंजिल मेरी, वीर प्रभू का साया है।
साया से ही उर में मैंने, बढ़ने का बल पाया है ।।

—x—

दिव्या लोक

श्री छोटेलाल जी 'कंवल' (अत्यत)
खुरई (सागर) म० प्र०

धीर-वीर गभीर हृदय था
महावीर युगवीर का
कण-कण देता है प्रश्नो का
उत्तर मलय समीर का

वैभव उनके चरण चूमने, सुर नगरी तज आया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

पुन पुन भव भाव-भ्रमण से
वीतराग जिन विलग हुए
इन्द्रिय निग्रह तप सयम मे
ज्ञानानन्दी सजग हुए।

अष्ट कर्म रिपु वशीभूत कर दुनिया को दिखलाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

जगमग जगमग दीपमालिका,
केवल ज्ञान प्रतीक बनी।
परम अहिंसा धर्म प्रेरणा—
युग युगान्त की लीक बनी॥

अनेकान्त के समझौते ने सारा विश्व रिझाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

—※—

विरोध भास स्तुति

रचयिता—श्री फूलचंद जी पुष्पेन्द्र खुरई

(१)

वीर में वीर-रस तो बहा ही नहीं—
जिन्दगी भर करुण-रस प्रवाहित रहा।
खून था ही नहीं, इसलिए दूध ही—
दूध उनकी रगों में निरन्तर बहा॥

(२)

युद्ध अथवा महायुद्ध देखे नहीं—
जीतने की उन्हें बात ही दूर थी।
शत्रुता थी नहीं एक भी जीव से—
शूरता-वीरता आदि मजबूर थी॥

(३)

सिंह के लक्षणों से समायुक्त थे—
पाशविकता नहीं किन्तु छू भी गई।
जंगलों में रहे जंगली थे नहीं—
नग्नता सभ्यता रूप परणित हुई॥

(४)

वीर गति मिल चुकी है महावीर को—
मिल चुकी है उन्हें आत्म स्वाधीनता।
वीर-शासन अहिंसामयी दिख रहा—
वीर चक्रांकिता सत्य-शालीनता॥
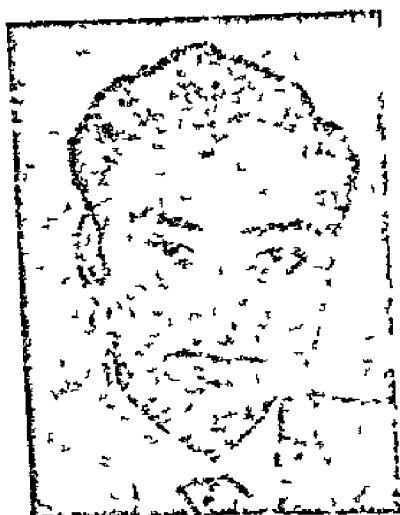
वीर वाणी को अन्तस में उतारो

श्री रमेश जैन 'अरुण'
व्याख्याता शास० उ० मा०
शाला सुग्धी (सागर)
म० प्र०

महावीर तुम्हारी सत्य अहिंसा
हो गई कैद
इस एटमी युग मे
शाति को निगल गई
क्रान्ति की निशाचरी
तुम्हारे अनुयायी गाधी को
मार दी गई गोली
अध्यात्मवाद की
हो रही नीलामी
लग रही जगह जगह बोली
झूठी आस्था के खडे हो रहे महल
पाखडो का लगाया जा रहा पलस्तर
वाणी भूषण के कुशल कारीगर

कर रहे पहल
हम सभी वाह वाह
की फैला रहे रोशनी
जो दूर के तम का
करती हरण
पर अन्तस् में सोये
तामस का
कहाँ होता अनावरण ?
मेरी पीढ़ी के लोग
तुम्हें क्या हो गया है ?
क्या तुम नहीं जानते
अपनी औकात ?
तुम्हारे हाथों में है
सूरज का उजाला
अंधेरे की कैसी सौगात ?
विवेक से काम लो
अन्धेरे के गीत
मत गाओ
'अरुण' का प्रकाश
यदि न दे सको
तो पावस अमां की निशा का तम
मत बाँटो
अपना चिरन्तन मूल्य
इस तरह शून्य आकाश में
मत आँको
उठो, देखो
तुम्हारी, अगवानी को

प्रगति की दुल्हन
आरती लिए खड़ी है
प्रेम का दो सम्बल
आशीष की सुहाग बिंदी दो
उसे स्वीकारो
मानव हो, मानव की तरह
मानव को निहारो
वीर की वाणी को
अन्तस् मे उतारो
श्रद्धा से करो
नमन, वन्दन, अर्चन,
मिथ्यात्व को मारो

आत्मा का गणतत्र

श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु

केन्द्रीभूत हुई सत्ताएँ—तथा कथित ईश्वर मे।
किया विकेन्द्रीकरण—उन्ही का हर आत्मा के घर मे॥
राज्य नही, गणतन्त्र नही, अब प्राणिमात्र अनुशासन—
छाया समवशरण सर्वोदय तीनो लोको भर मे॥१॥
यह स्वतन्त्रता-युद्ध बदल जाए यदि मुक्ति-समर मे।
तो फिर सच्चा साम्यवाद भी आ जाए क्षण भर मे॥
हो सहयोग स्वावलबन पूर्वक समाज की रचना।
यदि समष्टि की हर इकाई स्थित हो आत्म अमर मे॥२॥

आज के संत्रास मय संसार में, महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है

रचयिता :—व्याख्याता श्री लालचंद जी 'राकेश'
शा० उ० मा० शाला रायसेन (म० प्र०)

(१)

आज का मानव पिपासाकुल,
मगर पानी नहीं, वह खून पीना चाहता है।
ओढ़ कर इंसानियत की खाल,
जिन्दगी शैतान की उन्मुक्त जीना चाहता है ।।
पुण्य का सम्पूर्णतः परित्याग कर,
दिन-रैन ही है लिप्त वह पापाचरण में।
किन्तु किसी मूर्ख, बेलज्जत,
पुण्य फल की चाह रखता है स्व मन में ।।
व्यस्त सुख की खोज में नर,
पर पा रहा सर्वत्र वह तम ही सघन है।
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ।।

(२)

आज नर की जिन्दगी क्या ?
छल, दम्भ, मिथ्या, मोह, तृष्णा की पिटारी।
कनक वर्णी कामिनी की आग में,
आसक्त हो, बनकर शलभ फूंकी, गुजारी ।।
और कंचन चाह कितनी ?
द्रोपदी के चीर जैसी बढ़ रही दिन-रात दूनी।

कादम्बनी बिन जिन्दगानी,
सेमर-सुमन ज्यों लग रही है व्यर्थ सूनी ।।
"छोड इनको सर्वथा रे,
अन्यथा तेरा सुनिश्चित पतन है।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सदेश ही ऊषा किरण है।।"

(३)

जन्म क्या है ? "मरण की भूमिका है",
ले चुका इसको अनंती बार प्राणी।
मृत्यु का कब ग्रास बना जाने,
कब कफन ले ओढ अस्थिर जिंदगानी ।।
इसलिये भयभीत सब हैं,
लडखडाते भार अपना ढो रहे है।
कर रहे हैं पचपरिवर्तन,
अनादिकाल से दुख दग्ध हो कर रो रहे हैं।।
"ध्यान द्वार कर्म रिपुओ का दहन,
रोक सकना चार गतियो का भ्रमण है।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है।।

(४)

जीव-हिंसा, झूठ, चोरी का,
जहा देखो वही वातावरण है।
चारित्र का रथ गिर रहा है,
दिखता सुरक्षा का नही कोई यतन है।।
और फिर ये ग्रह परिग्रह का,
म ज की खोपडी पर चढ उसे ललकारता है।

इसलिये नर कर रहा संचय,
दीन-दुखियों को सदा दुत्कारता है ।।
"ये पाप हैं, छोड़ें इन्हें,
बन गया इस भांति जो वातावरण है ।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ।।

(५)

बन रहे अणुबम, बड़े हम,
कह रहे हैं चीन, रसिया और अमरीका ।
विस्तारवादी नीति पर चलकर,
परस्पर कर रहे आलोचना, टीका ।।
आज का मानव, दुखी, पीड़ित, प्रकंपित,
पी रहा है अश्रुजल खारा ।
बारूद का ईंधन, बनेगा एक दिन,
निश्चित लड़ाकू विश्व ये सारा ।।
"जियो खुद, और जीने दो,
अगर माना नहीं इसने कथन है ।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है ।।"

(६)

कौन देखो जा रहा वह ?
दीन, नंगा और भिखमंगा ।
धरा ही सेज है जिसकी,
औ' चादरा आकाश की गंगा ।।
इक नजर इस ओर भी डालो,
प्रासाद में वैभव किलोलें कर रहा है ।

एक को मिलता नही खाने,
दूसरा खाने के कारण मर रहा है ॥
"पाट सकता 'वीर' का आदर्श ही,
अर्थ के वैषम्य की खाई गहन है।"
आज के सत्रस मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ॥

(७)

जन्म से कोई नही छोटा बडा,
कर्म ही नर श्रेष्ठता की है कसौटी।
एक जैसी आत्मा सब प्राणियो मे,
हो किसी की देह लम्बी या कि छोटी ॥
प्यार तुम बाटो सभी को,
बाहु फैला कर गले सबको लगाओ।
तुम किसी के प्राण मत घातो,
विश्व कल्याणी अहिंसा की सुखद लोरी सुनाओ ॥
सर्वोदयी सिद्धान्त कहता,
आइये छोटे-बडे सबको शरण है।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ॥

साम्यवाद और भ० महावीर

वर्द्धमान महावीर विराट् व्यक्तित्व के धनी थे। शान्ति और क्रान्ति के वे जननेता थे। यद्यपि राजसी वैभव उनके चरणों में लोटता था तो भी पीड़ित मानवता और जन जीवन से उन्हें सहानुभूति थी। समाज में व्याप्त अर्थ जन्य विषमता और व्यक्ति उद्भूत काम-वासनाओं के नाग को अहिंसा, संयम और तप के गारुडी संस्पर्श से कील कर वे समता, सद्भाव और स्नेह की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित करना चाहते थे।

भ० महावीर का जीवन-दर्शन और तत्त्व-चिंतन इतना अधिक वैज्ञानिक और सर्वकालिक लगता है कि वह आज की हमारी जटिल समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त है। आज की प्रमुख समस्या है सामाजिक अर्थजन्य विषमता को दूर करने की। इसके लिए मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को हल के रूप में रखा। शोषक और शोषित के आपसी अनवरत संघर्ष को अनिवार्य माना और जीवन की अन्तश्चेतना को नकार कर केवल भौतिक जड़ता को ही सृष्टि का आधार माना। इससे जो दुष्परिणाम हुआ वह हमारे सामने है। हमें गति तो मिल गई पर दिशा नहीं। शक्ति तो मिल गई पर विवेक नहीं। सामाजिक वैषम्य तो सतह पर कम हुआ प्रतिभासित हुआ पर व्यक्ति के मन की दूरी बढ़ती गई। व्यक्ति के जीवन में धार्मिकता रहित नैतिकता और आचारहीन विचारशीलता पनपने लगी। वर्तमान युग का यही सब से बड़ा अन्तर्विरोध और सांस्कृतिक संकट है। भ० वीर की विचारधारा को ठीक से हृदयंगम करने पर समाजवादी लक्ष्य

तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके सन्देश

ले० प० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

अटल-सत्य—

"उत्पाद्व्यय ध्रौव्य युक्त सत्" के सिद्धान्तानुसार ससार परिवर्तनशील है, जिसमे विकास और विनाश का चक्र सदा-सर्वदा अबाधगति से घूमता रहता है। प्रकृति के कण-कण मे —जर्रे-जर्रे मे यह परिवर्तन व्याप्त है। कौन जानता है कि जो आज सुखो की सुरभित शय्या पर सानन्द सो रहे हैं, दूसरे ही क्षण उन्हे कांटो का राहगीर बनना पडे। जगत को प्रकाशित करने वाले भुवन-भास्कर को उदयाचल से उदित होकर अस्ताचल की शरणलेनी ही पडती है। प्रकृति मे ऐसे विविध उदाहरण हमे निरन्तर दिखाई देते हैं, किन्तु यदि इन सारे परिवर्तनो को दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो क्या वस्तुत. वस्तु का नाश होता है ? तो निश्चय ही मानना पडेगा कि वस्तु अथवा द्रव्य का नाश कभी नही होता, अवश्य ही उसकी पर्यायो मे हेर-फेर होती रहती है।

जैन धर्म का सत्य—

अपेक्षाकृत धर्म विशेष का नाम जैन धर्म नही, प्रत्युत् वह तो सहज स्वरूप, सच्चिदानन्द, शुद्धात्मा की विराट् झांकी है। यह वह तत्त्व है जिसकी की आज के युग मे नही, अतीत युग

अथवा भविष्य युग में नहीं, परन्तु त्रिकाल में निरन्तर आवश्यकता है ! अनिवार्यता है !! अनिवार्यता इसलिए कि वर्तमान आत्माएँ जिस अवस्था में हैं उनकी वह अवस्था--वह स्वरूप उनका अपना तो है नहीं, किसी दूसरे का है, जिसे कि अज्ञानता वश वे उसे अपना मानती हैं और निरन्तर निवृत्ति मार्ग से दूर हटती हुई बन्धन में फंसती जाती हैं । इसी बन्धन से जीव मात्र को निकालने वाली जो भी वस्तु हो सकती है वही 'धर्म' है। व्यावहारिक नाम में उसी धर्म को - कर्त्तव्य को "पतित पावन जैन धर्म' की संज्ञा है ।

आज उसकी अनिवार्यता—

हाँ, तो अतीत अथवा भविष्यत् युग की समस्याओं को कुछ देर के लिए यदि गौण रखा जाय, केवल वर्तमान काल का ही चित्रपट आज अपनी आँखों के सामने खींचा जाय तो कहने की आवश्यकता नहीं कि आज के युग में उसका एक मात्र हल—अमोघ औपधि जो कुछ हो सकती है—"वह जैन धर्म ही है" ।

आज विश्व त्रस्त है—संतप्त है, भौतिकता अथवा जड़वाद की क्षणिक विभूतियों में प्राणी बिक रहा है— नष्ट हो रहा है । पारस्परिक व्यवहार में वैमनस्य की दुर्गन्धि छाई हुई है। व्यक्ति से लेकर समाज और राष्ट्र तक एक दूसरे का वैभव नहीं देख सकता। दृष्टिकोण और मार्ग सर्वथा विपरीत हो गये हैं। अहम् और दम्भ के विष से भरी हुई बुराईयाँ आज अच्छाईयों का जामा पहिने हुए एक-दूसरे को हड़पने की चेष्टा में प्रवृत्त हैं । कहीं भी कोई भी मुक्ति का मार्ग नजर नहीं आता । आहें तथा क्रन्दन जीवन के परमाणु बन गये हैं। एक वाक्य में—"आज वर्तमान निराश है—मार्ग प्रदर्शन की उसे प्रबल प्रतीक्षा है ।"

देखिये न, जहाँ भी थोडी सी आशा की झलक दिखाई देती है, उसी ओर उसकी टकटकी लग जाती है। कितना पगु-पराधीन है आज का विश्व !

क्या कारण है कि अधिकांश विश्व की आँखे आज भारत पर लगी हुई है ? अशान्त विश्व आज क्यो भारत से शान्ति की आशा कर रहा है ? इसलिए नही कि एक ही व्यक्ति की आवाज़ ने अपने राष्ट्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। अहिसा से ! शक्ति से ! ! सत्य से ! ! ! और जिस मृतात्मा का सन्देश आज विश्व के मस्तिष्क मे अपना घर कर रहा है उस युग पुरुष को अहिसा और शान्ति का वरदान देने वाली आखिर यह प्रेरणा आई कहाँ से ? किस अतीत के एव कौन से बीजाङ्कुर इस भारत की पावन भूमि पर डले रहे जिन्हे आज हम फलीभूत होते देख रहे है , तो कहना नही होगा कि किसी युग नायक ने ही युग नायक को जन्म दिया होगा और फिर वह युग नायक भी कितना महान् नही होगा कि जिसने सारे युग को बदलने के साथ ही अपने को बदलकर परमात्म-पद की प्राप्ति की। स्व कल्याण और पर कल्याण की प्रतीक वह विशुद्ध महान् आत्मा हमारे लिए त्रिकाल वन्दनीय है सस्मरणीय है। अतीत युग का कल्याण यदि उनके उस पावन पौद्गलिक शरीर से हुआ तो वर्तमान का कल्याण भी उनके उन्ही हितकारी सन्देशो से होगा—जो आज हमारे पास अतुल निधि के रूप मे—धरोहर के रूप मे विद्यमान है और जिनके जीते-जागते आदर्श आज हमे देखने को मिलते है।

जैनधर्म की प्राचीनता—

आज के इतिहास मे नवीन-नवीन खोजो के कारण यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि जैनधर्म अपेक्षा-

कृत सभी धर्मों से प्राचीन है। अनेकों प्रमाणों में से यहाँ पर सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के एक दो प्रमाण प्रस्तुत करना श्रेयस्कर होगा।

'विश्व संस्कृति में जैनधर्म का स्थान' शीर्षक लेख के विद्वान् लेखक श्रीमान् डा० कालीदास नाग एम० ए० डी० लिट लिखते हैं कि ...."जैनधर्म और जैन संस्कृति के विकास के पीछे अगणित शताब्दियों का इतिहास छिपा पड़ा है। श्रीऋषभदेव से लेकर बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ तक महान् तीर्थङ्करों की पौराणिक परम्परा यदि छोड़ भी दी जाय तो भी हमें अनुमानतः ईस्वी सन् ८७२ वर्ष पूर्व का ऐतिहासिक काल बतलाता है कि उस समय २३वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म हुआ। जिन्होंने ३० वर्ष में घर-गृहस्थी, राजपाट त्याग दिया और जिनको लगभग ईस्वी सन् से ७७२ वर्ष पूर्व बिहार प्रान्तस्थ पार्श्वनाथ पहाड़ पर मोक्ष प्राप्त हुआ। भ० पार्श्वनाथ निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के महान् प्रचारक थे। उन्होंने समूचे संसार को पतित पावन अहिंसामयी जैन धर्म का उपदेश दिया। उस समय यह धर्म प्राणिमात्र का धर्म था।"

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् प्रोफेसर श्री रामप्रशाद जी चन्दा के ही शब्दों में...."वास्तव में जैनधर्म अनादि निधन धर्म है, परन्तु इस अवसर्पिणी काल के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी हुए हैं। मोहन-जोदड़ो नामक पुरातन स्थान में एक पांच हजार वर्ष प्राचीन ऐसा शहर मिला है, जहाँ के सिक्कों पर भ० ऋषभदेव की मूर्तियों की छाप है तथा नीचे "जिनेश्वराय नमः" ये शब्द अङ्कित हैं।"

ऋषभदेव किसी भी प्रकार ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी इतिहास में उनको स्थान न दिया जाना यह सिद्ध करता है कि वे वैदिक महापुरुषों से भी एक प्राचीनतम महापुरुष हो चुके

है। यही कारण है कि वेदो मे यत्र-तत्र ऋषभदेव जी का स्मरण किया गया है इसीलिए इन्हे यदि अन्य महापुरुषो के समान पौराणिक ही मान लिया जावे तो ऐतिहासिक पुरुष मानने मे क्या आपत्ति हो सकती है ? इन ऋषभदेव जी से लेकर कितने ही लम्बे कालो के अतर से परम्परया भ० पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थङ्कर और हुए। इनमे से नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ तो विशुद्ध ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार कर लिए गए है। भ० पार्श्वनाथ के २७२ वर्ष बाद हमारे चरित नायक भ० महावीर स्वामी का आविर्भाव हुआ। इसलिए जिन परिस्थितियो मे उनका जन्म हुआ उसको प्रकाश मे लाने के पहिले हमे भ० पार्श्वनाथ के बाद के शासन काल की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

भ० पार्श्वनाथ के बाद की परिस्थिति—

भ० पार्श्वनाथ स्वामी के मुक्ति लाभ के २७२ वर्ष बाद और ईस्वी सन् से ६०१ वर्ष पूर्व अर्थात् आज से २५८३ साल पहिले बिहार प्रान्त के कुण्डग्राम (वर्तमान बसाड) नामक नगर मे राजा सिद्धार्थ तथा महारानी त्रिशला के गर्भ से भ० महावीर स्वामी का जन्म हुआ। राजा सिद्धार्थ एक न्यायप्रिय शासक थे और उनका राज्य धन धान्य से सम्पन्न था। वे इक्ष्वाकु कुल भूषण ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय राजा थे। महारानी त्रिशला उस युग के भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति राजा चेटक की वरिष्ठा (बडी) सुपुत्री थी। वैशाली उनकी राजधानी थी।

इतिहास बतलाता है कि उस काल मे भी आज के समान भारतीय गण तन्त्रात्मक राज्य छोटे-छोटे राज्य सघो मे विभक्त था। उन्ही राज्य सघो मे से वज्जियन राज्य सघ एक विशाल सघ था और राजा चेटक वही से अपना शासन सचालन करते

थे। त्रिशला के अतिरिक्त राजा चेटक की छह सुपुत्रियां और थीं। सब से छोटी पुत्री चेलना इतिहास प्रसिद्ध बिम्बसार सम्राट् श्रेणिक की महारानी थीं, राजा सिद्धार्थ सम्राट् श्रेणिक एवं राष्ट्रपति चेटक क्षत्रिय होकर भी जैनधर्म के सच्चे अनुयायी थे। पारस्परिक संबंधों के कारण ये खूब हिलमिल कर रहते थे। फलस्वरूप तत्कालीन भारत में इनका कोई भी शत्रु नहीं था और जो थे भी वे उत्तम व्यवहारों से वशीभूत कर लिए गए थे। साम्राज्यवाद के ये कट्टर विरोधी थे।

तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक स्थिति—

राजनैतिक स्थिति तो उस समय ऐसी थी जिसकी कि आलोचना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। कारण कि राजकीय पुरुष जैनधर्म के निर्ग्रन्थ आदर्श पथ चिह्नों पर चलते हुए शासन सूत्र चला रहे थे। हमारे चरित्र नायक भ० महावीर स्वामी के पिता सम्राट् सिद्धार्थ स्वयं भ० पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उस समय भारत से दुर्भिक्ष विदा हो चुका था, इसलिए प्रजा राज्य बाधाओं से उन्मुक्त थी। टैक्स उतना ही था, जिसको प्रजा नहीं के बराबर अनुभव करती थी। किन्हीं स्थितियों का यदि अधिक से अधिक मार्मिक तथा रोमाञ्चक वर्णन किया जा सकता है तो वे उस समय की सामाजिक तथा पाखण्डपूर्ण धार्मिक परिस्थितियां ही हो सकती हैं। धार्मिक रीति-रिवाज अपने पाखंडमयी क्रियाकाण्डों के कारण बेहद बिगड़ चुके थे। धर्म के नाम पर जहां एक ओर हिंसा की खुलकर होलियाँ खेली जा रही थीं, वहाँ दूसरी ओर अत्याचार-अनाचार-असत्य-स्वार्थ-अधर्माचार आदि के कारण नैतिक गुणों पर भी पाला पड़ता जाता था। धर्म तत्त्व के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में साम्प्रदायिकता का घातक हलाहल भरा हुआ था। उस समय के स्वार्थी-विलासी-पाखंडी एवं मांसाहारी धर्म गुरुओं ने—धर्म

विक्रेताओं ने जिस प्रकार निरपराध मूक पशुओं को जबरदस्ती यज्ञों की होलियों में झोंका है, उसकी करुण कहानी सुनने वालों के पास पत्थर का दिल चाहिये। धर्म तब देवता नहीं, दानव था ! वह टिक रहा था – स्वरचित विरचित मत्रो की बोलियों के आधार पर !

"यज्ञो वधो न वध"
'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
यज्ञार्थं पशव सृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा
यज्ञे मृता स्वर्गं यान्ति

इत्यादि उसके स्पष्ट उदाहरण हैं—नमूने हैं।

अन्ध श्रद्धालुओं या भोलेभालो को स्वर्ग और मोक्ष के टिकट बड़े ही सस्ते मूल्यों पर बिक रहे थे। तात्पर्य यह है कि किन्हीं स्वार्थी तत्त्वों के कारण धर्म तथा यज्ञादि क्रियाकाण्डों के नाम पर भारतीय वायुमण्डल हिंसा की दुर्गन्धि से भर गया था।

सामाजिक परिस्थिति भी इतनी आतङ्कपूर्ण और पेचीदा हो गई थी कि उसके परिष्कृत होने के आसार ही नजर नहीं आते थे। धार्मिक अनुष्ठान तो सोलहों आने पाखण्डियों की मुट्ठियों में बंध हो गये थे। मनुष्य और देवों का सीधा सबध कराने वाले ये पुरोहित दलाल अपना स्वार्थ साधते तो कुछ आपत्ति नहीं भी हो सकती थी, परन्तु अपना अनिवार्य अस्तित्व प्रकट करते हुए जब यज्ञों में जीवित प्राणियों को होम देना इनके बाएँ हाथ का खेल हो गया तब दूसरी ओर इनका जात्याभिमान भी खूब फलने फूलने लगा। फलस्वरूप ऊँच-नीच की भावनाओं पर जातिवाद का भूत खड़ा कर दिया गया। शूद्रादि इतर जातियों पर अत्याचार और अनाचार के जो पहाड़ टूट सकते थे टूटे और वे बेबस भी उनके नीचे चकनाचूर होने लगे। नारी का व्यक्तित्व निराश्रय होकर चीखें मार रहा था। एक मात्र

भोग की वस्तु ही उसको करार दिया था परन्तु दूसरी ओर भी यज्ञों में तिलमिलाते हुए प्राणियों की चीखें, शूद्रों और अबलाओं का आर्तनाद तथा दलितों की एक २ आहें साकार क्रान्ति बनतीं जा रही थीं। तात्पर्य यह कि कृत्रिमता के वितान में वास्तविकता छिप गई थी परन्तु प्रकृति के नियम के अनुसार इन समस्त अत्याचारों-पापाचारों के विरुद्ध मोर्चा लेने वाला एक ऐसा परोक्ष वर्ग नैतिक आधार पर तैयार हो रहा था कि जिसके जबरदस्त प्रहारों ने उस अशान्त वातावरण को शताब्दियों पीछे धकेल दिया।

आज का युग जो कि अहिंसा और शान्ति की सत्यता पर विश्वास करने लगा है—सब उसी वर्ग का—उसी क्रान्ति का सुखद परिणाम है। उस वर्ग में विश्व के कोने २ से उठने वाले महापुरुष योरोप के पाइथोगौरिस, एशिया के कन्फ्यूसस लाओत्स आदि उस वर्ग में सम्मिलित होकर जहाँ क्रान्ति के धीमे २ नारे लगा रहे थे वहाँ भारत में भ० महावीर की अहिंसा का एक बुलन्द नारा उन पाखंडी पंडों के हृदयों में सहस्रों भालों सा छिदता था। महात्मा बुद्ध भी यद्यपि इस क्रान्ति के नेता कहे जा सकते हैं किन्तु तवारीख के पन्ने बतलाते हैं कि वे भगवान महावीर की तुलना में गौण थे।

वीरावतरण

प्रकृति के निश्चित नियम के अनुसार जब-जब अधर्म का दुष्प्रचार और धर्म का ह्रास होता है, "जीवो जीवस्य भक्षणं" का अहितकारी सिद्धान्त जोर पकड़ता है। शान्ति के स्थान को अशान्ति और परोपकार के स्थान को स्वार्थ हथिया लेता है, उस समय प्राणियों के पिछले किन्हीं शुभ कर्मोदय से कोई न कोई महान् शक्ति इस मर्त्यलोक में अशान्त वातावरण को शान्त

करने के लिए अवतरित होती है। कहा भी है—

यदा यदा हि लोकेस्मिन्-पापाचार परम्परा।
तदा तदा हि वीरात्, प्रदुर्भा ता मम्भव ॥

अथात—जब-जब देश मे पापाचार बढा तब-तब ऋषभदेव से लेकर वीर प्रभु तक धर्म तीर्थ स्थापकों का जन्म हुआ।

हां तो, भारत के उस धार्मिक अशान्त वातावरण के समय कुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशलादेवी की पावन कूख म चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन शुभ मुहूर्त मे उस वीर महापुरुष ने जन्म लिया जिसने ससार को शान्तिमय सच्चे धर्म का उपदेश दिया, यही महान् उपदेशक जैनियो के ही नही वरन् अखिल विश्व के चौबीसवे तीर्थङ्कर अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के नाम से दुनिया मे प्रसिद्ध हुए।

वीरावतरण के समय

जिस समय वीरावतरण हुआ उस वक्त समस्त संसार मे हर्ष छा गया, न केवल मनुष्यो मे बल्कि तमाम सुर-असुर, किन्नर, आदि गन्धर्वों ने मिलकर हर्ष प्रकट किया। स्वय परिवार सहित इन्द्रो ने आकर भगवान का जन्मोत्सव मनाया। नगरवासियों ने भी खूब खुशियाँ मनाईं। प्रकृति ने भी उस समय अनूठी शोभा धारण की थी। आकाश निर्मल हो गया था और चारो ओर वन मे वसन्त की अपूर्व बहार थी। सुगन्धित मन्द पवन बहने लगा। सूर्योदय होते ही जैसे दिवाकीति (उलूक) की अपशकुन बोली बद हो जाती है, ठीक उसी तरह 'वीर-रवि' के उदय होते ही हिंसा का प्रचार करने वाले पाखण्डी पुरोहितों की तूती बद हो गई। धर्म के नाम पर बहने वाली स्वार्थ की सरिता का प्रबल प्रवाह रुक गया। तीनो लोको मे सुख और

शान्ति फैल गई। यहाँ तक कि नारकीय जीवों ने भी इस सुअवसर पर अन्तर्मुहूर्त के लिए सुख शान्ति का अनुभव किया।

राजा सिद्धार्थ ने भी पुण्यात्मा पुत्र की प्राप्ति के उपलक्ष्य में समूचे राज्य में "किमिच्छुक" दान दिया और उस दिन राज्य में जितने बच्चों ने जन्म लिया उनका पालन-पोषण राज्य घराने से ही होगा—इस प्रकार की घोषणा करके राजा ने प्रजा वत्सलता का अपूर्व परिचय जनता के लिए दिया। सिद्धार्थ ने होनहार बालक का नाम वर्द्धमान रक्खा।

वर्द्धमान का बाल्यकाल

जन साधारण की अपेक्षा वीर-प्रभु में कई विशेषताएँ थीं। उनका शरीर कामदेव के समान सुन्दर, कस्तूरी की तरह अत्यंत सुगन्धित, मल-मूत्र की बाधा से रहित, दूध के समान सफेद खून होने की वजह से उनके कान्तिवान शरीर से पसीना कभी नहीं निकलता था।

द्वितीया के चन्द्रमा के समान राजकुमार वर्द्धमान बढ़ने लगे, तब कभी घुटनों के बल चलकर, कभी खड़े होकर गिरना और गिरकर फिर खड़े होकर दौड़ने लगना और कभी अपने साथियों के साथ खेलना और कभी खेलते-खेलते माता की गोदी में जाकर बैठ जाना तथा तोतली भाषा में "भूख लगी है", यह कहकर उनकी छाती से लिपट जाना आदि बालकोचित क्रीड़ाओं द्वारा भगवान माता-पिता को सदा हँसाते ही रहते थे।

राजकुमार वर्द्धमान को वीर की उपाधि

यों तो वर्द्धमान सयाने होने पर अपने साथियों के साथ रोज ही खेल-खेलते थे, पर एक दिन किसी बगीचे में "कलामलाड़ी" ("आमली क्रीड़ा"—"अंडाडा वरी") खेल-खेलने सभी सहयोगी

बालक गये और पेड़ पर चढ़कर खेल खेलना शुरू कर दिया। उधर अचानक एक देव वर्द्धमान के बल की परीक्षा हेतु विकराल सर्प का रूप धारण करके आया और पेड़ की पीड़ से लिपट गया। भाग्य से उस समय वर्द्धमान ही की वृक्ष पर चढ़ने की बारी थी। भागते हुए वर्द्धमान आये और वृक्ष पर चढ़ने ही वाले थे कि इतने में ऊपर से किसी बालक ने उन्हें पेड़ पर चढ़ने से रोका और यह कहता हुआ कि "पेड़ से काला नाग लिपटा है, "वहीं रहो - पास न आओ" कहकर नीचे कूद पड़ा, दूसरे साथी न कूद सके, और भय के मारे रोने-चिल्लाने लगे। राजकुमार वर्द्धमान बेधड़क पेड़ के पास तब तक पहुँच गये और सर्प को पकड़कर उससे खिलवाड़ करने लगे। जब सर्प को बहुत दूर छोड़ आये तब वही बालक पेड़ से नीचे उतरे और राजकुमार की निर्भयता-निडरता और शूरवीरता से प्रसन्न होकर उनका "वीर" नाम रख दिया।

राजकुमार वर्द्धमान को महावीर की उपाधि

एक दिन एक हाथी पागल होकर नगर में उपद्रव मचा रहा था। प्रजा बेचैन थी, महावत हैरान थे और राजा सिद्धार्थ परेशान। बड़ी-बड़ी तरकीबें हाथी को पकड़ने की सोची गई, पर काम एक भी न आई जब यह बात वीर वर्द्धमान को विदित हुई तो घटनास्थल पर पहुंच कर ज्यों ही उस मदोन्मत्त पागल हाथी को पुचकारा और हाथ फेरा तो वह शान्त हो गया। वीर वर्द्धमान नन्द्यावर्त महल की ओर बढ़े तो हाथी भी उनके पीछे पीछे चलने लगा, यह देख सभी आश्चर्य चकित हो गये और तब से नगर के लोग उन्हें 'महावीर' कहने लगे।

वर्द्धमान का विद्याध्ययन समारम्भ

वर्द्धमान की आयु का सातवां वर्ष समाप्त हो चुकने पर

माता-पिता ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिए विद्यालय में भेजने का विचार किया। एक दिन राजा ने पुरोहित को बुलाकर विद्याध्यन का शुभ मुहूर्त निकलवाया और यथा समय तैयारियाँ प्रारंभ करदीं।

देखते-देखते नंद्यावर्त महल के सामने विशाल मण्डप बनकर तैयार हो गया। निश्चित समय से पूर्व ही मण्डप लोगों से खचाखच भर गया। इस अवसर पर कई राजा-महाराजा भी आये थे। हवन क्रिया के उपरान्त उपाध्याय ने कहा—बोलो

"णमो अरिहंताणं"

वर्द्धमान ने पूरा अनादि निधन मन्त्र बोल दिया। उपाध्याय को आश्चर्य हुआ, तब उन्होंने राजकुमार की पट्टिका पर 'अ, आ' लिखकर उनसे इन्हीं दो शब्दों को लिखने के लिए कहा—वर्द्ध-मान ने पट्टिका पर समस्त स्वर और व्यञ्जन वर्ण लिख दिये। उपाध्याय को तब बहुत आश्चर्य हुआ कि इन्होंने बिना सीखे यह सब कैसे लिख दिये! तब उन्होंने एक कठिन सवाल लिख-कर दिया, राजकुमार ने उसे भी हलकर दिया। एक अधूरा श्लोक बोला तो उसकी भी पूर्ति कर दी! अब तो सभी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि बात क्या है? उस समय उपाध्याय के कुछ भी समझ में नहीं आया।

पर वास्तविक बात यह थी कि आग काड़ी में कही बाहर से नहीं लानी पड़ती, वह तो उसके अन्दर ही रहती है। पूर्व जन्म के सुसंस्कारों के प्रभाव से ही भ० वर्द्धमान-महावीर मति, श्रुति, और अवधि ज्ञान सहित अवतरित हुए थे; इसलिए यहाँ तो उन्हें आग काड़ी को जैसे खींचने ही भर की देर होती है उसी भाँति केवल उन्हें याद दिलाने मात्र ही की आवश्यकता थी। इसलिए अन्य बालकों की तरह इन्हें किसी गुरु से शिक्षा

नहीं लेनी पडी—वे तो स्वय बुद्ध थे।

राजकुमार वर्द्धमान को सन्मति की उपाधि

एक दिन राजकुमार वर्द्धमान अपने साथियो समेत प्रकृति की शोभा निरखने के लिए वन-विहार को गए और एक शिला खड पर बैठकर किसी तात्विक विषय पर चर्चा करने लगे। उसी समय दो ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये और वर्द्धमान को देखते ही उनकी बहुत दिनो की कई शकाओ का समाधान हो गया उसी समय मुनिद्वय ने उन्हे सन्मति के नाम से सबोधन कर नमस्कार किया था।

वर्द्धमान को युवराज पद की प्राप्ति

ससार के परदे पर कोई विद्या-विज्ञान और भाषाएँ ऐसी न बची थी जिनके कि राजकुमार पूर्ण जानकार न थे। तत्वज्ञान का जितना अधिक मथन उन्होने किया था उतनी ही राजनीति और समाजनीति के समझने की भी कोशिश की थी। उनका विश्वास था कि जिस देश मे धर्म समाज और राजनीति की मधुर धाराएँ सम-समान रूप मे प्रवाहित नही होती। वहाँ का शासन अधिक उन्नत, समृद्ध एव सुख शान्ति मे सुसज्जित नही रह सकता। राजकीय सुख शान्ति का श्रेय राजनीति को है। जातीय धन-वैभव का श्रेय समाजनीति को है और आत्मा के विकास का सारा श्रेय धर्म-नीति को है।

राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र को राजनीति मे अधिक कुशल जानकर उन्हे युवराज बना दिया। राज्य-शासन की बागडोर सभालते ही महावीरश्री ने अपनी कार्य कुशलता का परिचय इतने अच्छे रूप मे दिया कि उनकी सानी का राजनीतिज्ञ इतिहास के पृष्ठो मे ढूढने पर भी नही मिलता।

आजन्म ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा

कुमार वय के व्यतीत होने पर बड़ी उमंग से अगणित रमणीक भावनाओं को लेकर उस यौवन वय ने युवराज महावीर का सौ-सौ बार स्वागत किया जिसकी रम्य गोदी में बैठकर मनुष्य उन्मत्त हो उठता है, विषय वासनाएँ मानवोचित कर्त्तव्य से उसे दूर फेंक देती है। काम का कठोर प्रहार उसे रमणियों का दास बना देता है; किन्तु विश्व विजेता वर्द्धमान को वह यौवन रंच-मात्र भी विचलित न कर सका। संसारी प्राणियों के बन्धन मोचन करने वाले वर्द्धमान के दयार्द्र दिल को यौवन का प्रबल तूफान तनिक भी न हिला सका। जनता चकित थी कि युवराज में यौवन और ब्रह्मचर्य का यह कैसा विषम सम्मेलन है किन्तु यह कौन जानता था ? कि क्षत्रिय युवराज ने नवयुग प्रवर्तन के लिए मन ही मन आजीवन ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा से अपने को आवद्ध कर लिया है।

विचार-विमर्श

राज्य-शासन के कार्यों में महावीरश्री की न्यायप्रियता और कार्य क्षमता देखकर राजा सिद्धार्थ फूले न समाते थे। वे अपने पुत्र को कुल का भूषण और और न्याय का मूर्तिमान देवता समझते थे। सोचते थे महावीर अपना व अपने वंशजों का नाम विश्व में रोशन करेंगे।

एक दिन राजा सिद्धार्थ ने अपनी भार्या त्रिशला देवी से कहा कि—"अपना शरीर अब बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, संसार के माया-मोह और वर्द्धमान के वात्सल्य में पड़कर दिगम्बरी दीक्षा लेने से अभी तक वंचित रहे जो कि अपने लौकिक हित और लोक मर्यादा की रक्षा और स्थिति की दृष्टि

से बहुत बुरा हुआ, इसलिए अब हमे वर्द्धमान का विवाह करके शीघ्र ही राज-पाट से मोह हटा लेना चाहिए। स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए त्रिशलादेवी ने पतिदेव के माङ्गलिक प्रस्ताव का हृदय मे समर्थन किया और एकलौते पुत्र के विवाह की बात सुनकर अत्यत आनन्दित हुई।

आत्म-साधना की बुनियाद

नित्य प्रति राजनैतिक, सामाजिक विसवादो को सुलझाते-हुए वर्द्धमान की विशाल आत्मा विश्व-हित के लिए तडफ उठी, धर्म की मखौल उडाने वाले पाखडी पुरोहितो के अत्याचारो से दिल तिलमिला उठा। विश्व-हित की सद्भावनाएं हृदय में हिलोर मारने लगी और सुपुप्त क्षत्रियत्व जाग उठा।

वर्द्धमान ने विचार किया तो विदित हुआ कि दुनियाँ की खूरेजी का मूल कारण हिंसा और अहकार है, ये दोनो अत्याचारो की जड हैं, इनका दमन किये विना किसी भी हस्ती को दुनिया मे शान्ति कायम करना नामुमकिन है। तोप और तलवार जिस्म के भले ही टुकडे-टुकडे करद पर वे दिल मे बहने वाले उत्तम विचारो को नेस्तनाबूद नही कर सकते। राज्य-दण्ड के डर से विद्रोही का सर भले ही झक जाये और चाहे तो वह क्षमा भी मांग ले, पर उसके विद्रोही विचार नही बदल सकते। आग की जलती हुई ज्वाला मे मनुष्य का शरीर भस्म हो सकता है, पर उसकी खोटी प्रवृत्तियाँ तो इससे और भी सतप्त हो जायँगी। इसलिये अपने सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्द्धमान को कुल परम्परा से प्राप्त राज्य-तत्र, विशाल शस्त्रागार, और अजेय सेनानी, विशाल भवन व्यर्थ से जान पडने लगे। दुनिया को रिझाने वाली भोगोपभोग की विविध आकर्षक वस्तुएं उन्हें नीरस ज्ञात होने लगी। राजसी सुखो के बीच वर्द्धमान को रहते

हुए तीस वर्ष गुजर गए, पर स्फटिक के समान स्वच्छ सरल हृदय में लालसा की कालिमा जरा भी न लग पाई थी, यह सब ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपम प्रभाव था।

वर्द्धमान की वीरता (विवाह से इन्कार)

एक दिन बड़ी-बड़ी उमंगों को हृदय में छिपाये महारानी त्रिशला पुत्र के पास पहुँची और युवराज वर्द्धमान कुछ कहें कि उसके पूर्व ही उन्होंने विवाह का सुन्दर प्रकरण उनके समक्ष रख दिया, पहले तो महावीर मुस्कराये; बाद में उन्होंने सूखी हँसी-हँसकर अपना मस्तक झुका लिया, पर जब वही प्रश्न उनके समक्ष फिर दुहराया गया तो उन्होंने अपनी माता से विनम्र शब्दों में विनय की—

"कि इस संसार में सर्वत्र आकुलता ही आकुलता व्याप्त है। मिथ्यात्व और काल्पनिकता की रेतीली दीवारों पर यह संसार टिका हुआ है, अन्याय और अत्याचार, विषमताएँ और भ्रष्टाचार अपना नंगा नाच दिखा रहे हैं। यह सब वातावरण देखकर मेरी अन्तरात्मा इन सब दृश्यों से विरक्ति चाहती है। आत्मनिष्ठा के सत्य को पहचान कर ही मैं अब उसकी साधना करना चाहता हूँ। दुनिया के दलदल में फँसकर यह साधना नितान्त असंभव, है अतः हे माताजी मुझे विवाह करने से सर्वथा इन्कार है।" इस प्रकार अपने हृदय में धर्म प्रचार का जोश लाकर तथा संयम के द्वारा इच्छाओं पर अंकुश लगाकर वैभव से मुख मोड़कर संबंधियों से नाता तोड़कर उन्होंने बारह भावनाओं का चिंतवन किया। जिनका कि अनुमोदन देवों ने भी आकर किया।

वैराग्य और दीक्षा

मायावी दुरंगी दुनिया से चित्त को हटाकर वर्द्धमान ने राज-

पाट और घर-बार को छोड दिया और ज्ञातृवनखड नाम के वन मे जाकर मगसिर कृष्णा दशमी के दिन स्वाभाविक नग्न दिगम्बर भेष को ग्रहण कर सिद्ध परमात्मा को साष्टाङ्ग नमस्कार करने के बाद आत्मस्वरूप मे लीन हो गये। ध्यान लगाते ही योगो की प्रवृत्तियो को रोकने से उसी समय दूसरो के मन की बात को जान लेने वाला चौथा मन पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया।

वर्द्धमान को अतिवीर की उपाधि

जिस समय विहार करते हुए महावीर स्वामी उज्जैन नगरी की ओर आये, उस समय ११वें रुद्र ने बडा भारी उपसर्ग किया था, पर वे अपने ध्यान से जरा भी विचलित नही हुए। उनकी दृढता-त्याग और तपस्या को देखकर महादेव (रुद्र) का मान विगलित हो गया और महावीरश्री के समक्ष आकर नमस्कार करने के बाद उसने उन्हे अतिवीर कहकर प्रार्थना की।

महावीर स्वामी के विरोधी दुष्ट पाखडियो ने समय-समय पर उन पर भारी अत्याचार किये लेकिन उन्होने उन अत्याचारो की जरा भी रोक-थाम नही की और वे एक वीर सेनानी की तरह अन्त तक वार पर वार सहते ही गये। महावीरश्री ने अपना दयालु गुण नही छोडा पर विरोधियो को अपने विचारो मे परिवर्तन कर लेना पडा, अनेक असह्य उपसर्गों को सहन करते हुए महावीरश्री ने इसी तरह बारह वर्ष बिता दिये।

महावीरश्री की जीवन मुक्त-अवस्था

अनेक निर्जन बीहड वनो—भूधर कन्दराओ-वृक्ष के खोखलो मे सर्वोच्च आध्यात्मिक पद प्राप्ति के लिए उग्र तप तपते हुए महावीर जब ऋजुकूला नदी के तट पर अवस्थित जृम्भक ग्राम

के उद्यान में पधारे तब दुद्धर तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर आपने वैसाख सुदी दशमी के दिन केवलज्ञान प्राप्त कर लिया अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये। उनका अपूर्णज्ञान पूर्ण ज्ञान के रूप में परिणत हो गया। इस प्रकार भगवान तीर्थङ्कर वर्द्धमान स्वामी तब सर्वज्ञाता-सर्वदृष्टा वीतराग भगवान महावीर हो गये।

महावीरश्री की उपदेश-सभा

भ० महावीर स्वामी को केवलज्ञान के प्राप्त होते ही उसी समय इन्द्रों ने आकर इस महान पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उपलक्ष्य में विशाल विराट् उपदेश सभा का निर्माण किया।

जिस उपदेश सभा का नाम समवशरण था जिसकी विशेषता यह थी कि उसके द्वार विश्व के प्राणिमात्र के लिए खुले हुए थे, आने-जाने की रोक-थाम किसी को भी न थी, न किसी प्रकार का टिकट ही श्रोताओं को खरीदना पड़ता था।

इन्द्र की परेशानी और बुद्धिमानी

वारह कोस की विशाल-विराट् उपदेश सभा सभी श्रेणी के प्राणियों से भर चुकने पर भी जव भगवान महावीर का उपदेश प्रारम्भ न हुआ तो सभा स्थित हर वर्ग के प्राणियों की हैरानी-परेशानी से सभा का व्यवस्थापक इन्द्र भी दुविधा में पड़ गया। विना पट्टशिष्य (गणधर) के तीर्थङ्कर भगवान की वाणी नहीं खिरती, इस वात को अवधिज्ञान से जानकर यह भी ज्ञात कर लिया कि अनेक शास्त्रों और पुराणों का वेत्ता वेदपाठी इन्द्रभूति गौतम ऋषि के आये विना भगवान का उपदेश प्रारम्भ नही हो सकता। तव वह वृद्ध विप्र का रूप धारण कर इन्द्रभूति गौतम के समीप जा पहुँचा और जैन धर्म का एक साधारण-सा

श्लोक अर्थ जानने की इच्छा से उसके सामने रख दिया। बहुत प्रयत्न के पश्चात जब उससे श्लोक का अर्थ नही निकला तब उसका अर्थ जानने की जिज्ञासा से इन्द्रभूति गौतम वृद्ध विप्र के पीछे हो लिया। जिस समय वृद्ध ब्राह्मण के भेष मे इन्द्र समव-शरण के समीप पहुँचा और पतित पावन जैन-धर्म से सदा विद्वेष करने वाले इन्द्रभूति गौतम ने महा मगलमय मानस्तभ देखा तो उसका मान चूर चूर हो गया, बदला लेने की दुर्भावना भी गुम हो गई और उसके कुभावो मे परिवर्तन होने लगा जब वह भगवान महावीर स्वामी के अत्यन्त समीप पहुँचा तो उनके शरीर से निकलने वाली पुण्याभा को देखकर उसका सिर महावीरश्री के चरणो मे स्वयमेव झुक गया। उसी समय महावीरश्री का उपदेश प्रारम्भ हुआ। अर्थात् वे विश्व कल्याण के विस्तीर्ण क्षेत्र मे उतरे। वीर प्रभु की दिव्यवाणी इन्ही गौतम गणधर द्वारा ग्रथित एव व्याख्यायित हुई।

महावीरश्री का पहला कदम (भाषा मे क्रान्ति)

महावीरश्री ने अपने उपदेश 'अर्द्धमागधी' भाषा मे जो कि उस समय की राष्ट्र भाषा थी—दिये। भाषा के सम्बन्ध मे यह जबरदस्त क्रान्ति थी। उस समय के भारत मे सस्कृत की दृढ किलेबन्दी को मिटाना कोई आसान कार्य न था। सस्कृत के वे विद्वान पडित-पुरोहित कि जिनके हाथो मे उस वक्त वेदो की सत्ता मौजूद थी—राष्ट्रभाषा बोलना बडा भारी पाप समझते थे। उस समय प्राकृत-भाषा जन-साधारण की भाषा से सस्कृत के पडितो को कितना द्वेष था, यह इसीसे जाना जा सकता है कि वे नाटको मे प्राकृत भाषा मात्र नीच पात्रो से बुलवाते थे परन्तु क्रान्ति के अग्रदूत महावीरश्री ने इसका क्रियात्मक विरोध किया—उन्होंने बताया कि भाषा अपने मानसिक विचारो को

व्यक्त करने का एक साधन है। इसलिए किसी एक भाषा को आध्यात्मिक वाणी मान लेना निरी मूर्खता है। देश की सभी भाषाएँ प्रत्येक दृश्य-अदृश्य समस्या का स्वतंत्र हल करने की योग्यता रखती हैं। भाषा को उथली और गंभीर बनाना उसके जानने वालों पर निर्भर है। जो भाषा जन-साधारण के मन को नहीं छूती उससे जन-साधारण की कामना करना निरर्थक है। उस समय संस्कृत ही एक ऐसी भाषा थी जो जनता के दिलों को न छूती थी। इसलिए इस भाषा क्रान्ति से जनता में नव चेतना लहरा उठी और राष्ट्र की भाषा में महावीरश्री का उपदेश मिलने की वजह से आध्यात्मिक प्रश्नों को समझने लगी। इसके बाद भारत की वसुन्धरा पर जितने भी संत पुरुष हुए उन सब ने लोक भाषा को ही अपनाया। स्वयं महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर का ही अनुसरण किया—क्योंकि उनका उपदेश भी जन-साधारण की भाषा पाली नामक प्राकृत में हुआ था। महावीरश्री की इस क्रान्तिपूर्ण देन का प्रभाव युग-युगान्तरों को पार कर आज भी हमारे सामने आदर्श की भाँति उपस्थित है।

महावीरश्री का दूसरा कदम (अहिंसावाद)

उस युग में देवी-देवताओं के समक्ष किसी आशा विशेष से मूक पशुओं की बलि बहुत ही निर्भयता से दी जाती थी। संसार के वे अनजान-बेजबान प्राणी जो अपनी तकलीफों को मुँह से कहने में असमर्थ हैं, प्रकृति की तुच्छ घास पर जिनकी जिन्दगी निर्भर है। मानव जाति के अहित की आशा जिनसे स्वप्न में भी संभव नहीं और न जिनकी सुख-दुख भरी मूक वाणी को इस रक्त-रंजित विराट् कोलाहल में कोई सुनने वाला नहीं है ऐसे भोले-भाले प्राणियों की विकल आहुति देखकर महावीरश्री

का मोम सा कोमल दिल पिघल उठा। उन्होंने अहिंसक वाणी मे भूली-भटकी जनता को समझाते हुए कहा—

"दया मानव-धर्म का मूल मंत्र है, दया शून्य धर्म हो ही नही सकता, दूसरो की भलाई मे ही अपनी भलाई निहित है। सुख-दुख का अनुभव सब जीवो को एक-सा होता है, इसलिए सब जीवो को अपने सरीखा समझकर स्वप्न मे भी उनका अहित मत करो। सृष्टि की महती कृपा से जो सुविधायें तुम्हे प्राप्त हुई हैं वे इसलिए कि जिससे तुम अधिक से अधिक भलाई कर सको - न कि बुराई के लिए। दीन-दुखियो को तुम से साहस मिले, न कि भत्सना और आफत के सताये तुम से त्राण पा सकें, न कि उल्टा कष्ट। प्रकृति के अग जैसे तुम हो, वैसे दूसरे भी हैं। उनके ताडन-पीडन का तुम्हे क्या अधिकार? यदि उनका निर्माण व्यर्थ हुआ है तो इसका फल वे स्वय भुगतेंगे या उनका भाग्य भुगतेगा अथवा वह जिसने उन्हे उत्पन्न किया? व्यर्थ चीजो के सहार का विधान आपको सौंपा किसने? आपकी दृष्टि मे जैसे वे व्यर्थ हैं सभव है आप भी दूसरो की दृष्टि मे व्यर्थ ठहरते हो? तब क्या होगा? वे जैसे हैं, वैसे ही जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हे दीन पशु कहाकर जीना पसन्द है, पर आपके क्रूर प्रहार से आहत होकर स्वर्ग जाना स्वीकार नहीं। यदि आपने बलिदान द्वारा स्वर्ग भेजने का प्रण ही बना लिया है तो कृपा कर पहिले आप अपने परिवार मे ही यह मागलिक कार्य प्रारम्भ कीजिये। वे दीन-पशु तो घास खाकर ही जीवन व्यतीत करने मे सन्तुष्ट है। अत "खुद जियो और दूसरो को भी जीने दो"—अपने लिए दूसरो को मत मारो—मत हनन करो। अपनी ताकत और बहादुरी को दूसरो की सहायता और भलाई के लिए काम मे लाओ। किसी पर जुल्म करना पाप है, और किसी का जुल्म सहना सब से बडा पाप है।

महावीरश्री की इस प्रशान्त गंभीर वाणी के सामने हिंसा के कुटिल तर्क कुंठित हो गए और स्वार्थ की निर्दय प्रवृत्तियाँ सदय हो गई। इस प्रकार महावीरश्री ने न केवल बलिदान वंद किये वलिक मानव समाज को जीव दया का पाठ पढ़ाया। देवदासी जैसी घृणित-प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंकने का सारा श्रेय इन्हीं लोकोत्तर भगवान महावीर को है।

भ० महावीर और महात्मा बुद्ध

विहार प्रान्त के एक अन्य क्षत्रिय राजकुमार गौतम बुद्ध ने भी उस समय की वीभत्स हिंसा को हटाने के लिए महावीरश्री का पदानुसरण किया। उन्होंने भी अहिंसा का प्रचार करने के लिए साधु जीवन स्वीकार किया था। गौतम बुद्ध भ० महावीर स्वामी के समकालीन तथा निकटवर्ती थे।

महात्मा बुद्ध ने पहले भ० महावीर के समान दिगम्बर साधुओं की तरह खड़े रहकर हाथों में भोजन करना, अपने हाथों से केशों का लुँचन करना आदि साधु-चर्या का आचरण किया। पीछे इन विधियों को कठिन जानकर छोड़ दिया। अपने शिष्यों के साथ वार्तालाप करते हुए म० बुद्ध ने भ० महावीर की सर्वज्ञता का जिक्र किया था। वे उन्हें एक अनुपम नेता के रूप में मानते थे। ये वातें बुद्धचर्या आदि ग्रन्थों से प्रमाणित हैं।

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार तो प्रारम्भ किया परन्तु पीछे अपने अनुयायियों की संख्या विशाल रूप में वढ़ाने के लिए उस अहिंसाव्रत को ढीला कर दिया। अपने आप मरे हुए या अन्य के द्वारा मारे गये जीव का मांस भक्षण कर लेने में भी अहिंसा कायम रह सकती है—वतलाकर महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन में एक वड़ी भूल की। इसीलिये बौद्ध धर्मानुयायियों में मांस भक्षण की परम्परा वनी रही—जो कि अब तक चालू है।

लेकिन भगवान महावीर ने ऐसा कदापि नही किया। वह सख्यक शिष्यो को अनुयायी बनाने का लोभ उन्हे पराजित न कर सका। अतएव भले ही अहिंसा धर्म की दृढ चर्या के कारण भ० महावीर के अनुयायी भ०-बुद्ध के अनुयायियो से कम सख्या मे रहे, किन्तु जो भी रहे पूर्ण अहिंसाव्रती रहे। उन्होने रच मात्र भी मास भक्षण को नही अपनाया और आज तक ऐसा ही होता चला आया है, बौद्ध जनता मास भक्षण से परहेज नही करती जब कि जैन जनता उससे सर्वथा दूर है।

महावीरश्री का तीसरा कदम (अनेकान्तवाद)

पहले दार्शनिको का वाद-विवाद अधिकाश मे एक-दूसरे के दृष्टिकोण पर सहानुभूति के साथ विचार न करने पर अवलम्बित था। अस्तु दार्शनिक जगत् मे समता की स्थापना करने तथा अखट सत्य का स्वरूप स्थिर करने के उद्देश्य से भ० महावीर ने स्याद्वाद (अनेकान्त) सिद्धान्त की स्थापना की थी। स्याद्वाद दार्शनिक एव धार्मिक कलह की शान्ति का अमोघ उपाय है। है। वह अति उदारता के साथ दूसरो के दृष्टि बिन्दु को समझने की शिक्षा देता है। विशाल हृदय और विशाल मस्तिष्क बनने का आदर्श उपस्थित करता है।

भ० महावीरने स्याद्वाद का सन्देश देते हुए कहा—"तुम ठीक रास्ते पर हो, तुम्हारा कथन सही है, पर दूसरो का कहना भी सही है। दूसरो की सचाई को समझे बिना ही अगर उन्हे मिथ्या कहते हो, तो तुम स्वय मिथ्या भाषण करते हो। रुपये के सौ पैसे बताना तो सत्य है परन्तु बीस पजी कहने वाले को मिथ्याभाषी कहने मे तुम स्वय मिथ्याभाषी बनते हो। विरोधी को असत्य भाषी कहना तुम्हारी सत्यनिष्ठा नही है। किन्तु उसकी सत्यनिष्ठा को भलीभाँति समझ लेने मे ही तुम्हारी

सत्यनिष्ठा है।"

प्रत्येक वस्तु को ठीक-ठीक समझने के लिए उसे विभिन्न दृष्टियों से देखो उसके अलग अलग पहलुओं से विचार करो, वस्तु के अनन्त गुणों तथा अनन्त विचार धाराओं का शुद्ध समन्वय करने की शक्ति स्याद्वाद में है अनेकान्तवाद में है।

विभिन्न दर्शन शास्त्रों का समन्वय करने में समस्त दर्शन शास्त्र एक दूसरे के विरोधी न रह कर पूरक बन जाते हैं। उन सब के समन्वय में ही अविकल सत्य के दर्शन हो सकते हैं। अतएव वस्तु तत्त्व की प्रतिष्ठा करने के लिए तथा व्यावहारिक जीवन में साम्य लाने के लिए स्याद्वाद (अनेकान्त) की अत्यन्त उपयोगिता है। स्याद्वाद का यह सुनहरा सिद्धान्त भ० महावीर की सबसे बड़ी अनुपम देन है।

महावीर श्री का चौथा कदम (साम्यवाद)

उस समय के धार्मिक क्षेत्र में बहुत सी मूर्खताएँ प्रचलित थीं। धर्म तत्त्व में आध्यात्मिकता का कोई प्रमुख स्थान नहीं था। हर जगह वही मूर्खतापूर्ण व्यापार की प्रधानता थी। हर-एक धर्म संकुचित घेरे में पड़ा सिसकारियाँ ले रहा था। भ० महावीर ने इन सभी बुराईयों का घेरा तोड़कर अत्यन्त वीरता और दृढ़ता के साथ मुकाबला किया। विभिन्न समाजों में समता की स्थापना हेतु उन्होंने मानव जाति को एकता का उपदेश दिया। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा—

"मनुष्य जातिरेकैव"

अर्थात् मानव जाति एक ही है। उसको कई भागों में बाँटना निरी मूर्खता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि का जाति भेद बिल्कुल काल्पनिक है। कर्म से ब्राह्मण होता है,

कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है। इसलिए गुणों की पूजा करो, शरीर की नहीं। किसी को दलित और नीच कह कर मत दुत्कारो, मत घृणा करो, न किसी को उच्च कुल में उत्पन्न होने से ही उसे ऊंचा मानो। सब मनुष्यों को अपना भाई समझो और अनुचित भेद भावों को भूल जाओ।

यह विश्वास और धारणा कि मैं पवित्र हूँ और वह अपवित्र है, मैं ऊँच हूँ और वह नीच है, जघन्य और घृणित पाप है जो विश्व को रसातल में पहुँचाये बिना कदापि नहीं रह सकता। विश्व का कोई भी अंग अपवित्र अथवा नीच नहीं है। इसके विपरीत यह मानना कि अमुक अंग अपवित्र और नीच है—राष्ट्र, धर्म और समाज के प्रति महान कलंक हैं—भयंकर पाप है। किसी को नीच कह कर उसके स्वाभाविक धर्माधिकारों को हड़पना निःसन्देह महा नीचता है—घोर पाप है।

महावीरजी का पांचवां कदम (कर्मवाद)

भ० महावीर स्वामी ने कर्मवाद के सम्बन्ध में कहा—"जो जैसा करता है वही उसे भोगता है इसलिए 'जैसी करनी वैसी भरनी" के व्यक्ति सम्मत सिद्धान्त को किसी कल्पित और अज्ञात शक्ति को सौंप देना कहां की बुद्धिमानी है। जिस वस्तु को व्यक्ति ने पैदा किया है उसका उपयोग करने या न करने का उसे पूरा अधिकार है। परम पिता परमात्मा कोई किसी को सुख दुख नहीं देता किन्तु पूर्वबद्ध कर्मों का प्रतिफल समय आने पर व्यक्ति को अपने आप मिलता है। जब कोई व्यक्ति अच्छे या बुरे विचार या आचरण करता है—उसी वक्त उसके आस-पास (इर्द-गिर्द) में फैले हुए अनन्त पुद्गल परमाणु खिंच कर आते हैं और उसकी आत्मा से चिपट कर आत्मस्वरूप

को ढक लेते हैं, इसी को जैन-सिद्धान्त में कम कहते हैं। इन्हीं संचित कर्मों की वजह से यह जीव विविध योनियों में भ्रमण करता हुआ सुख-दुख भोगता है। इसलिए हर समय उठते-बैठते-सोते-जागते शुभ आचार-विचार करो—जिससे ये दुष्ट कर्म तुम्हारी आत्मा को मैला-कुचैला न कर सकें। इन्हीं कर्म शत्रुओं को तपश्चरण द्वारा नाश कर आत्मा-परमात्मा बन जाता है।

ईश्वर, परमात्मा, भगवान, पैगम्बर, खुदा-तीर्थङ्कर ये सब एक ही नाम के पर्यायवाची शब्द हैं। इनमें नाम का झगड़ा करना व्यर्थ है। परमात्मा प्राणियों का पथ-प्रदर्शक हो सकता है। उसे आदर्श अनुपम और अलौकिक मानकर उनकी पूजा-अर्चना कर उनके बताये मार्ग पर चलने में भी किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिये। लेकिन यदि परमात्मा व्यक्ति की प्रवृत्तियों एवं उसके फल पर बन्दिस लगाना चाहे तो यह उसकी ऐसी अनाधिकार कुचेष्टा कही जायगी जिसे कोई दिमाग रखने वाला विज्ञानी आत्मा मानने को कटिबद्ध न होगा।

राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ममता, जन्म, मरण आदि अनेक रोगों से रहित कर्म विहीन आत्मा ही परमात्मा है, ईश्वर है, तीर्थङ्कर है, पैगम्बर है। विश्व-विधान से उसका कोई वास्ता नहीं है। सृष्टि तो जैसी आज है वैसी ही पहिले भी थी और आयन्दा भी वैसी ही रहेगी। उसमें होने वाले परिवर्तन-परिवर्द्धन और उत्पादन काल चक्र की देन है—परमात्मा की नहीं। इसलिए जगत के भूले-भटके दुखित संत्रस्त प्राणियों को संबोधते हुए भ० महावीर स्वामी ने कहा—"जप, तप, संयम, नियम, सदाचार, विज्ञान और आत्मा का अहर्निशि चिन्तन-मनन करने से हर एक व्यक्ति ईश्वर के अविनाशी अजर-अमर पद पर पहुँच सकता है।"

भ० महावीर ने कर्मवाद के सिद्धान्त का प्ररूपण कर हर एक व्यक्ति को अपने पैरो पर खडे होने की शिक्षा दी और ईश्वरशाही के हथकडो से बचाकर कर्मठ एव कर्त्तव्यनिष्ठ बनाया।

महावीरश्री का छटवां कदम (नि सगवाद)

मनुष्य का स्वभाव ही सग्रहशील है—अधिक से अधिक जुटाना, मग्रह करना उसकी प्रधानवृत्ति है। लेकिन यही प्रवृत्ति विश्व कलह की जननी है। दूरदर्शी भ० महावीर स्वामी मानव स्वभाव की इस बडी कमजोरी से युवराजावस्था से ही परिचित थे, इसलिए उन्होने आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए ही नि सगवाद अर्थात अपरिग्रहवाद का धर्म मे समावेश किया। यदि वे ऐसा न करते तो जनता इसे राजनैतिक चाल कह कर टाल देती। नि सगवाद का स्पष्ट अर्थ है—जरूरत से अधिक नही जोडना। यह जरूर है कि सम्पत्ति मानव जीवन की सब से अधिक आवश्यक वस्तु है लेकिन श्वांस लेने की तरह नही। यदि ससार की सारी सम्पत्ति एक जगह जुड जाय तो दुनिया मे विप्लव मच जाय, कलह और अशान्ति की उद्भूति होने लग जाय। धन का सग्रह करना बुरा नही है, लेकिन उसको जमीन मे गाढ रखना या केवल अपने ही स्वार्थ के काम मे लाना बुरा है—बहुत अधिक बुरा है।

नि सगवाद और साम्यवाद दोनो मे भेद है। नि सगवाद व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है और साम्यवाद राज्यकीय सगठन से। नि सगवाद मे व्यक्ति की भावना काम करती है और साम्यवाद में राज्यकीय अनुशासन। नि सगवाद का दारोमदार अहिंसा पर अवलम्बित है जब कि साम्यवाद हिंसा पर आश्रित है। नि सगवाद का स्रोत हृदय है और साम्यवाद दिमाग के तूफानी

विचारों से पैदा हुआ है। दिमाग की अपेक्षा हृदय से निकली चीज अधिक टिकती है, इसीलिये लोग उसे अपनाते भी हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि निःसंगवाद सिद्धान्त की सतत प्रवाहशील शीतल धारा है और साम्यवाद सिर्फ समय की देन है। संसार के इतिहास में यदि पहिले-पहल पूंजीवाद की खिलाफत कहीं मिलती है तो वह भगवान महावीर स्वामी के निःसंगवाद में।

महावीरश्री का सातवाँ कदम (धर्मवाद)

धार्मिक क्षेत्र में भी भ० महावीर स्वामी ने अनेक संशोधन किये थे। उन्होंने धर्म सम्बन्धी जनता की दूषित मनोवृत्ति को बदल दिया था। महावीरश्री ने धर्म को आत्मस्पर्शी बनाकर जीवन में उसकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने धर्म का जो रूप जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया वह बहुत ही सीधा-साधा सरल-सार्वजनिक और व्यापक था। उन्होंने कहा—"सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है और वह वह सनातन है—अनादि निधन है। जो सनातन नहीं, वह सत्य नहीं हो सकता। वह किसी सीमा में आवद्ध नहीं है। सत्य को उत्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि वह कभी मरता ही नहीं है। सत्य तो सुमेरु की तरह अचल और आकाश की भाँति नित्य और व्यापक है। इसलिए सत्य ही धर्म है। वह कभी और कहीं नूतन नहीं हो सकता। वही सत्य उत्कृष्ट मंगल स्वरूप है, ऐसा परम उत्कृष्ट मंगल जिसमें अमंगल का लेश भी न हो—वास्तविक धर्म कहलाता है। सत्य तो आत्मा की आवाज है, वह आत्मा में ही रहता है। जो आत्मा की वास्तविकता से अवगत हो जाता है—वह धर्म-तत्त्व को जान लेता है—समझ लेता है। वास्तविक धर्म सत्य ही है। उसी सत्य के संरक्षण के लिए बाहरी जितने भी व्रत संयम-नियम पाले

जाते हैं वे सब उसके कारण हैं। व्रतो का अनुष्ठान ही सत्य के सरक्षण के लिए किया जाता है।

"वत्थु स्वभावो धम्म"

अर्थात् वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है। आत्मा का स्वभाव सत्य रूप है इसलिए वास्तविक धर्म सत्य ही है।

स्त्रियो के प्रति महावीरश्री की उदारता

प्राय स्त्रियो पर सदा से अत्याचार होते आये हैं, इसलिए सभवत उनको अबला नाम से पुकारा जाता है। उस समय भी स्त्री जाति पर अधिक अत्याचार होता था। उसका कोई व्यक्तित्व न था। उसका पढने-लिखने तक का अधिकार छिन गया था। वह केवल पुरुष की दासी मात्र थी। इतना ही नही, उसकी कोई स्वतत्र सत्ता भी नही थी। उसे मृत-पुरुष के साथ जबरन जलना पडता था, उसके सतीत्व का भी यही अर्थ था—यही प्रमाण था कि जीवन भर पुरुष की इच्छा पर नाचती रहे और उसके मरने पर उसकी चिता के साथ जल मरे—अपनी आहुति दे दे।

भगवान महावीर ने इसका घोर विरोध किया सत्याग्रह किया और पुरुष को स्त्री की महत्ता बतलाई। वे स्त्रियो का बहुत आदर करते थे और उनकी विराट् धर्म-सभा मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को उच्च स्थान प्राप्त था।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"

के सुन्दर सुरभित गीत उन्ही के दिव्योपदेश का फल है। उनके पहले तो—

'न स्त्री स्वातन्त्र्य महंति'—'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्'

इत्यादि कल्पित शास्त्राज्ञाओ ने स्त्रीत्व के सारे गौरव को मिट्टी मे मिला रखा था। पर भ० महावीर के उपदेश ने स्त्रियो मे

ऐसी क्रान्ति का विगुल फूँका कि उनकी उपदेश सभा में वे पुरुषों से कई गुणी अधिक पहुँचती थीं और उनका दिव्योपदेश श्रवण कर आत्म-कल्याण में विरत हो जाती थीं। आज भी जितनी अधिक धार्मिकता स्त्रियों में है, उतनी पुरुषों में नहीं है उन्हीं की धार्मिकता से भारतीय संस्कृति अभी तक अक्षुण्ण बनी हुई है। जिसका सारा श्रेय भ० महावीर स्वामी को है।

आश्चर्यजनक अतिशय

भ० महावीर ने ३० वर्ष तक लगातार तत्कालीन भारत के मध्य के काशी, कौशल, कौशल्य, कुसन्ध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पंचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक नाम के देशों में, समुद्रतट के कलिङ्ग कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवन श्रुति, सिन्धु, गांधार, सूरभीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज, और क्वाथतोय देशों में एवं उत्तर दिशा के तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि देश-देशान्तरों में भ्रमण किया। वे जहाँ जाते वहाँ विराट् धर्म-सभाएँ की जाती, उन धर्म-सभाओं में लाखों-करोड़ों नर-नारी, पशु-पक्षी तक आकर बैठते और भगवान का दिव्योपदेश सुनते थे।

स्वाभावत: प्रश्न उठता है कि उस समय तो आज सरीखे रेडियो और लाऊडस्पीकर नहीं थे, फिर भ० महावीर स्वामी की आवाज सभा में स्थित लाखों आदमियों तक कैसे पहुँचती होगी ?

प्रश्न वास्तविकता को लिए ठीक है पर जिनको इस प्रकार की शंका होती है उनको ज्ञात होना चाहिए कि वर्तमान की अपेक्षा उस समय विज्ञान का अभाव नहीं था, उस समय भी किसी भिन्न प्रकार के ध्वनि प्रसारक या ध्वनिवर्धक साधन महावीरश्री के धर्म-सभा में रहते थे जिन्हें जैन परिभाषा में

अर्द्ध मागध जाति के देव या एक प्रकार का अतिशय कहते हैं— उनके द्वारा उनका उपदेश १२ कोष लंबी-चौडी गोल विराट् धर्म सभा मे पहुँचता था।

महावीरश्री के धर्मोपदेश का प्रभाव

भ० महावीर स्वामी ने अपने हित-मित मयी दिव्योपदेश द्वारा उस समय के लोक मे प्रचलित सभी तरह के अन्याय, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, दुष्प्रथाएँ, दुराग्रह एव पोप-पन्थो के विरुद्ध सत्याग्रह किया और जन-साधारण को सन्मार्ग का सदुपदेश दिया। भगवान के उपदेश मे प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओ ने अमीरो और गरीबो ने, विद्वानो और अल्पज्ञो ने उच्च और दलितो ने, छूत और अछूतो ने, पशु और पक्षियो ने सभी ने पतित-पावन विश्व (जैन) धर्म धारण कर प्राप्त जीवन को सफल बनाया। उस समय भ० महावीर स्वामी द्वारा प्रचारित जैन-धर्म आज सरीखे तग घेरे मे बद नही था, उसका दरवाजा तो सभी के लिए खुला था। इसीलिए उस समय इस धर्म ने सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली थी।

लोकोपकारी भ० महावीर ने अगणित प्राणियो को अज्ञानान्धकार से निकालकर यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराया, मोह मिथ्यात्व और मूढता का आवरण हटाकर जीवो को सच्चा रास्ता सुझाया और प्रचुर मात्रा मे प्रचलित लोक मूढताओ-पाखण्डो-रूढियो और दुराग्रहों को हटाया, पतितो को पवित्र किया, अछूतो को छूत बनाकर गले लगाया, हिंसा को बन्द कराकर "खुद जियो और दूसरो को जीने दो" का सबक पढाया, कायरता को हटाकर जनता को स्वावलम्बी बनाया, वैमनस्यता को पछाड कर विश्व मे भ्रातृत्व भाव को फैलाया। इस तरह भ० महावीर स्वामी ने अपने सदुपयोगी सदेशो द्वारा ससार को

सुखी शांत और पवित्र बनाया।

लगातार तीस वर्ष तक दिव्योपदेश देने के उपरान्त ७२ वर्ष की आयु के अन्त समय स्वात्मस्थ हो गये और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पहली (चतुर्दशी के बाद की) रात्रि को स्वाति नक्षत्र में विहार प्रान्तस्थ मल्लिवंशीय राजा हस्तिपाल की राजधानी मध्यमा पावापुर से अवशिष्ट चार अघातिया कर्मों का विनाश कर मोक्ष-लक्ष्मी को वरण किया था। इस तरह भ० महावीर स्वामी के ७२ वर्षों में एक भी क्षण उनका ऐसा नहीं गया जिस क्षण में उनके द्वारा दूसरों का उपकार न हुआ हो। उनका जीवन वास्तव में आदर्श जीवन था।

कृतज्ञता

महावीर श्री ने संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति महान उपकार किया था, उनके अगणित उपकारों से जनता दबी जा रही थी इसलिए कृतज्ञतावश उस समय की जनता ने अपने उपकारी परमगुरु के मुक्ति लाभ की खुशी में दीप जलाकर अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया था, तभी से दीपावली का पावन त्यौहार भारत में प्रचलित हुआ जो कि आज तक महावीरश्री के उपासकों द्वारा प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाता है।

महावीरश्री की स्मृति में वीर निर्वाणसंवत् भी आज तक प्रचलित है।

जय महावीर जय वर्द्धमान

जय सन्मति

जय वीर जय अतिवीर

—×—

पृष्ठ निर्देशन (ब)

—०—

२४ जटिल ऋषि का जीव परिव्राजक पुष्पमित्र के रूप मे
२५ कुतापसी पुष्पमित्र का जीव पुन सौधर्म स्वर्ग मे
२६ पुष्पमित्र का जीव अग्निसह ब्राह्मण
२७ घोर तप के प्रभाव से अग्नि सह सनत्कुमार स्वर्ग में
२८ त्रिदण्डी साधु अग्निभूत (अग्निसह का जीव)
२९ माहेन्द्र स्वर्ग मे अग्निभूत का जीव
३० महामिथ्यात्वी बाल तपस्वी भारद्वाज (अग्निभूत का जीव)
३१ ब्रह्म स्वर्ग मे भारद्वाज ब्रा०
३२ मनुष्य देव पर्यायों के पश्चात् मारीचि का जीव निगोद में
३३ नरको की असह्य वेदना सहता हुआ मारीचि का जीव
३४ मारीचि के जीव का पुन नारकीय जीवन
३५ पच स्थावरो मे भटकता मारीचि का जीव
३६ लज्जाजनक हीन पर्यायो का इतिहास
३७ एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के दुखों का वर्णन
३८ विकलत्रय त्रस एव मानव पर्यायों मे मारीचि
३९ पचेन्द्रिय तिर्यच पर्यायो मे मारीचि
४० शाडिल्य पुत्र स्थावर द्विज के रूप में
४१ स्थावर द्विज माहेन्द्र स्वर्ग मे
४२ विश्वनदी द्वारा वैसाखनद पर वृक्ष प्रहार
४३ विश्वनदी द्वारा वैशाखनद पर वृक्ष स्तम्भ प्रहार
४४ विश्वनदी द्वारा दिगम्बरत्व ग्रहण
४५ मुनि विश्वनन्दी का आहारार्थ गमन
४६ बलिष्ठ बैल द्वारा विश्वनदी मुनि पर आक्रमण
४७ विश्वनदी मुनि का महा शुक्र स्वर्ग मे प्रयाण
४८ नारायण प्रतिनारायण का द्वन्द्व युद्ध
४९ त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा अश्वग्रीव प्रतिनारायण का वध
५० त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा गायक शय्यापाल पर आक्रोश
५१ पापोदय से त्रिपृष्ठ नारायण सातवें नर्क मे उत्पन्न

१५	तप कल्याणक	शाल वृक्ष के नीचे, वैशाख सुदी १०, उत्तर हस्ता नक्षत्र रविवार २६ अप्रैल ५५७ ई० पू०
१६	केवल ज्ञान कल्याणक	ऋजुकूला नदी के तट पर
१७	प्रधान गणधर	गौतमादि ग्यारह
१८	प्रधान श्रोता	श्रावकोत्तमबिम्बसार (श्रेणिक) महाराज मगध सम्राट्
१९	निर्वाण स्थल	मध्यमा पावानगर (विहार)
२०	आयुष्य प्रमाण	७१ वर्ष ४ माह २५ दिन
२१	निर्वाण वेला	शक सवत् ६०५ वर्ष पूर्व, स्वाति नक्षत्र, भौमवार १५ अक्टूबर ५२७ ई० पू०
२२	निर्वाण कल्याणक	हस्तिपाल राजा की उपस्थिति में निष्पन्न
२३	दीपोत्सव	रत्नदीप मय दिव्यालोक नागरिकों द्वारा सम्पन्न
२४	प्रधान साध्वी	चन्दना सती (त्रिशला जी की लघु भगिनी)
२५	दिव्य-ध्वनि	प्रथम देशना विपुलाचल राजगृह मे श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (वीर-शासन जयन्ती)
२६	सिद्धान्त	स्याद्वाद (अनेकान्त) परम अहिंसा अपरिग्रह आदि

जीवन-चक्र

१

इस जगती का रंग-मंच, ऐसा अपूर्व संगम-स्थल है।
जहाँ विविधताओं का अभिनय, होता ही रहता प्रति पल है॥

२

चिर अनादि से जीव अनन्तानंत, स्वाँग धर भटक रहे हैं।
आतम के अवलम्ब विना ही, पर्यायों में अटक रहे हैं॥

३

ऐसे ही संसारी जीवों में, हम सब की हैं निजात्मा।
जो अपने विस्मरण मरण से, खुद का ही कर रहीं खात्मा॥

४

महावीर की भी निजात्मा, हम जैसी ही संसारी थी।
युग-युगान्तरों आत्म-ज्ञान की; नहीं कोई भी तैय्यारी थी॥

५

लेकिन जिस क्षण खुद को जाना, माना पौरुष को पहिचाना।
कर्मठ सम्यक्त्वी ने तत्क्षण, कर्म-शत्रुओं से रण ठाना॥

६

और अन्ततः विभव-विभावों, का अभाव कर मुक्त हुये वे।
भव-भव की पर्यायें तज, स्वाभाविकता से युक्त हुये वे॥

७

भगवान जन्मते नहीं किन्तु, पौरुष से बनते आये हैं।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की; पथ प्रशस्त करते आये हैं॥

८

निम्न अवस्थाओ से लेकर, ऊँचे से ऊँचे विकास की।
क्रमश झाँकी यहाँ देखिये, महावीर के मोक्ष वास की॥

महावीर श्री अतीत की परतों में

हीयमान से वर्द्धमान

वनवासी पुरुरवा

९

पुण्डरीकणी वन का वासी, भिल्लराज था 'पुरुरवा'।
और 'कालिका' नामक उसकी, भद्र भीलनी श्याम-प्रभा॥

१०

एक दिवस दम्पति ने मृगया, मे मृग का जब किया शिकार।
'सागरसेन' एक मुनि तब ही, एकाकी कर रहे विहार॥

११

पुरुरवा-ने हरिण समझ उन, मुनिपर शर सधान किया।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया॥

१२

बोली—नाथ! रुको, मत मारो, ये वन-देव दिगम्बर हैं।
आत्मलीन ये पर- उपकारी, महाव्रती जिन गुरुवर हैं॥

१३

इनके वध के पाप-भाव से, मत भव-भव का बन्ध करो।
इनके चरण-कमल से, अपने मस्तक का सम्बन्ध करो॥

१४

सुन कर यह कल्याणी-वाणी, भिल्लराज को जागा ज्ञान ।
तत्क्षण पाद मूल में पहुँचा, फेंक वहीं पर तीर-कमान ॥

१५

मुनि श्री ने तब भव्य जान कर, उसको दिया धर्म-उपदेश ।
मद्य-मांस-मधु-सुप्त व्यसन से, वर्जित श्रावक व्रत निःशेष ॥

१६

धारण कर सम्यक्त्व सहित, वह जप-तप-संयम अणुव्रत शील ।
प्रथम स्वर्ग में देव महर्द्धिक, हुआ समाधि-मरण से भील ॥

पुरुरवा प्रथम स्वर्ग में

१७

महाकल्प नामक विमान में, वह सौधर्म-स्वर्ग का देव ।
मात्र एक अन्तर्मुहुर्त में, तरुण-किशोर हुआ स्वयमेव ॥

१८

अवधिज्ञान से जान लिया निज, पूर्व-जन्म का सब वृत्तान्त ।
धर्म-ध्यान के पुण्य फलों पर, उसकी श्रद्धा बढ़ी नितान्त ॥

१९

अतः सपरिकर चैत्य-वृक्ष पर, स्थित अरिहन्तों को नित्य ।
भक्ति-भाव से पूजा करता, था ले अष्ट-द्रव्य-साहित्य ॥

२०

नन्दीश्वर या पंचमेरु की; वन्दनाओं का लेकर लाभ ।
समवशरण में गणधर-वाणी, सुनता था वह सुर अमिताभ ॥

२१

सात हाथ ऊँचा शरीर था, सप्त धातु से रहित ललाम।
आयु एक सागर वर्षों की मति, श्रुति अवधिज्ञान अभिराम॥

२२

अष्ट ऋद्धियों का धारी वह, पाकर अनुपम पुण्य-विभूति।
अनासक्त रह कर भोगों से, करता सदा आत्म-अनुभूति॥

२३

यद्यपि वह देवाङ्गनाओं के, साथ अनत करता था केलि।
तो भी उसे न मूर्च्छित करती, थी क्षणमात्र विषय विष-बेलि॥

२४

आयु पूर्ण कर देव धरा पर, ऋषभदेव का पौत्र हुआ।
भरत चक्रवर्ती के घर मे, यह 'मारीचि' सुपुत्र हुआ॥

भरत चक्रवर्ती पुत्र मारीचि कुमार

२५

छह खडो की वसुन्धरा का, प्रमुख राजधानी का देवेन्द्र।
भरतेश्वर थे जिसके अधिपति, निर्माता जिसका देवेन्द्र॥

२६

उसी अयोध्या मे चक्री की, प्रिय 'धारिणी' के उर से।
सुत 'मारीचि' हुआ मेधावी, चय कर सौधर्मी सुर से॥

२७

भोगो से होकर विरक्त श्री, 'ऋषभदेव' निर्ग्रन्थ हुये।
चार सहस्र नृपति भी उनको, देखा देखी सन्त हुये॥

२८

चूं कि द्रव्य लिङ्गी मुनि थे वे, अतः धर्म से भ्रष्ट हुये ।
भूख-प्यास से व्याकुल होकर, जल-फल प्रति आकृष्ट हुये ॥

२६

'भरत' चक्रवर्ती के भय से, न: नागरिक वने नहीं ।
आदीश्वर सम रत्नत्रय के, भाव-लिङ्ग में सने नहीं ॥

३०

अतः वनस्थित देवराज ने, उन सब को यों किया सचेत ।
वेष दिगम्बर धारण करके, क्यों पाखंडी वने अचेत ॥

३१

इनमें से कुछ राजा गण तो, उद्बोधन को प्राप्त हुये ।
किन्तु शेष दुर्गति अनुसारी, मिथ्यामति में व्याप्त हुये ॥

३२

अन्तिम तीर्थङ्कर होगा, 'मारीचि'-दिव्यध्वनि में आया ।
जिसको सुनकर स्वच्छन्दी, ने अपनापन ही विसराया ॥

३३

होनहार अनुसार वना वह, मिथ्यामत का नेता था ।
परिव्राजक का वेष धार, उपदेश विपर्यय देता था ॥

३४

मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा, जगद्गुरू कहलाऊँगा ।
उन जैसा ही मैं भी अपना, पंथ अलग अपनाऊँगा ॥

३५

मिथ्यापन की यही मान्यता, भव-भव हमें रुलाती है ।
सम्यग्दर्शन के अभाव में, स्वर्ग-नरक दिखलाती है ॥

३६

परिव्राजक निज तप प्रभाव से, आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया ।
ब्रह्म स्वर्ग के सौख्य भोगकर, पुन धरा पर मनुज भया ॥

मिथ्या मत प्रचारक जटिल ऋषि

३७

ब्रह्मस्वर्ग से चय कर वह, मारीचि जीव अवनी पर ।
'जटिल' नाम का पुत्र हुआ, द्विज कपिल और काली घर ॥

३८

ऋषि बन कर मिथ्यात्व-धर्म का, उसने अति उपदेश दिया ।
भाति भाति की करी तपस्या, एव काय क्लेश किया ॥

३९

आयु पूर्ण कर उस तापस ने, प्रथम स्वर्ग मे जन्म लिया ।
स्वर्गिक सुख के भोगो मे ही, अपना काल व्यतीत किया ॥

परिव्राजक पुष्पमित्र

४०

भारद्वाज-पुष्पदत्ता ये, भारतीय द्विज दम्पत्ति थे ।
इनके सुत मारीचि जीव अब, पुष्पमित्र नामक यति थे ॥

४१

वे स्वर्गों का वैभव तज कर, नगर अयोध्या आये थे ।
साख्य धर्म के उपदेशो से, जन जन को भरमाये थे ॥

४२

आयु पूर्ण कर पुनः हुवे, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी।
क्योंकि तपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी॥

एकान्तमत प्रचारक अग्निसह्य ब्राह्मण

४३

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी में, अग्निभूति ब्राह्मण थे।
प्रिया गौतमी के संग सुख से, करते जो कि रमण थे॥

४४

वह मारीचि इन्हीं के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्या मत स्फुरित हुआ॥

४५

सनत्कुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस।
सात सागरों तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधु-रस॥

त्रिदंडी साधु अग्निभूति

४६

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर, मन्दिर नाम नगर में।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदंडी, गौतम द्विज के घर में॥

४७

मिथ्या शास्त्रों का अध्ययन, कर ऐकान्तिक फैलाया।
आयु पूर्ण कर पंचम स्वर्ग, पाई देव की काया॥

४८

होता है सम्यक्त्व न जब तक, तब तक सारे जप-तप ।
भले स्वर्ग का वैभव दे दें, कर्म न मगते पर खप ॥

महा मिथ्यात्वी भारद्वाज ब्राह्मण

४६

मातु मन्दिर ब्राह्मणी थी, जनक सावलायन थे ।
भारद्वाज नाम के उनके, सुत बहुश्रुत ब्राह्मण थे ॥

५०

जो कि स्वर्ग से चय कर आये, पूर्व सस्कारो वश ।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक, बने त्रिदडी तापस ॥

५१

फल स्वरूप देवायु बध कर, स्वर्ग पाँचवें पहुँचे ।
मद कषायी बाल-तपस्वी, सुरगति मे ही पहुँचे ॥

भव भ्रमण के भँवर-जाल में फँसा हुआ मारीचि का जीव

५२

अपना मूल स्वभाव भूल, बहिरातम भटक रहा है ।
वह अनादि से चारो गति, में औंधा लटक रहा है ॥

५३

नर्क-निगोद-तिर्यक्-सुर गति में, होकर त्रस-स्थावर ।
साठ लाख पर्यायें पाता, है मारीचि बराबर ॥

५४

वचनातीत सहे दुख इसने, स्पर्शेन्द्रिय होकर ।
जन्म-मरण फिर हुये अठारह, एक स्वाँस के भीतर ॥

५५

आलू-शकरकंद-लहसुन में, फिर उपजे फिर और मरे ।
एक देह में ही अनन्ते अक्षर, अनन्तवाँ ज्ञान धरे ॥

५६

सिद्धों का सुख एक ओर था, उससे उतना ही विपरीत ।
दुख निगोद में नरकों से भी, अधिक सहा था वचनातीत ॥

५७

आर्त-रौद्र मोहित परिणामों, के फल नरकों में भोगे ।
खून-पीव की वैतरिणी में, पहिन वैक्रियक चोगे ॥

५८

एक साथ बिच्छू सहस्र मिल, मानो डंक मारते हों ।
सेमर-तरु के पत्ते-पत्ते, भी तलवार धारते हों ॥

५९

आपस में लड़ टुकड़े-टुकड़े, किये देह के परावत ।
ले समुद्र की प्यास बूंद को, भी तरसा वह मिथ्यामत ॥

६०

जन्म-मरण के साठ लाख, तक कष्ट अनन्ते काल सहे ।
शुभ कर्मों से शांडलीक के, स्थावर द्विज बाल रहे ।

६१

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थ, पाई विप्र ने सुर पर्याय ।
क्योंकि स्वर्ग-सुख दे सकती है, विन समकित ही मंद कषाय ॥

६२

पृथ्वी-जल की-अग्नि-वायु की, वनस्पति की बादर काय ।
अपर्याप्त-पर्याप्त रूप से, धारी असंख्यात पर्याय ॥

६३

पृथ्वी कायिक मे भोगी, उत्कृष्ट आयु बाईस हजार ।
जल कायिक मे भोगी थी, उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार ॥

६४

उम्र तीन दिन-रात रही, कई बार अग्नि कायिक होकर ।
वायु काय का जीव हुआ, यह तीन हजार वर्ष सोकर ॥

६५

दस हजार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु ।
ईंधन - राधन - काटना - छेदन, भेदन दुख सहे निरुपायु ॥

६६

लट-चींटी-भँवरा विकलत्रय, द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव ।
चिन्तामणि सम दुर्लभ है त्रस, जिसमे रह दुख सहे अतीव ॥

६७

कुचले पीसे गये प्रवाहित, हुये अग्नि मे भस्मीभूत ।
खाये गये पक्षियो द्वारा, सहे दुख ,मारीचि प्रभूत ॥

६८

पचेन्द्रिय ,जब हुआ असैनी, हित अनहित का नही विवेक ।
ज्ञान अल्प था—मोह तीव्र था, धर्म हीन दुख सहे अनेक ॥

६९

संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु होकर, लघु जीवों का किया शिकार ।
स्वयं दीन कातर होने पर, बना सशक्तों का आहार ॥

७०

छेदन - भेदन—क्षुधा - पिपासा, की पीड़ायें क्या कहना ? ।
सर्दी - गर्मी—बोझा ढोना, वध बन्धन परवश सहना ॥

७१

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता ।
इसीलिये दुख सहे अनेकों, गर्भ जन्म एवं शिशुता ॥

७२

बालकपन में—खेलकूद में, सारा समय व्यतीत हुआ ।
भोग विलासों भरी जवानी में, कुछ भी न प्रतीत हुआ ॥

७३

बूढ़ी सब हो गईं इन्द्रियाँ, किन्तु वासना रही जवान ।
मरघट में पग लटक गये पर, आया नहीं धरम का ध्यान ॥

७४

इस प्रकार मारीचि जीव का, क्रमशः हुआ ह्रास पर ह्रास ।
हीन हीन पर्यायों का है, लज्जा जनक निम्न इतिहास ॥

७५

डेढ़ हजार अकौआ की थीं, सीप योनि अस्सीय हजार ।
नीम और केला तरु की थीं, सहस बीस नव क्रम अनुसार ॥

७६

तीस शतक चन्दन तरु एवं, पंच कोटि भव हुये कनेर ।
वेश्या साठ हजार बार बन, पांच कोटि तन धरे अहेर ॥

७७

बीस कोटि अवतार गजों के, गर्दभ पशु के साठ करोड़ ।
स्वांग श्वान के तीस कोटि थे, साठ लाख क्लीवों के जोड़ ॥

७८

बीस कोटि नारी पर्यायें, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष ।
मार्जार एव तुरगी के, बीस साठ कोटिक भ्रम कक्ष ॥

७९

साठ लाख पर्यायों में तो, गर्भपात कर बारम्बार ।
उपजे राजाओं के पद पर, उपर्युक्त गिनती अनुसार ॥

८०

दानादिक के पुण्य फलों में, भोगभूमि अवतार हुआ ।
अस्सी लाख बार स्वर्गों में, क्रमश देवकुमार हुआ ॥

८१

ह्रास विकासों के झूलों पर, झूला वह नीचे ऊपर ।
किन्तु मुक्ति का मार्ग न पाया, रत्नत्रय पथ पर चल कर ॥

८२

इस प्रकार मारीचि जीव ने, कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा ।
क्योंकि कभी भी उसने निज से, सम्यक् नाता नहिं जोड़ा ॥

युवराज विश्वनंदी

८३

भ्रमते-भ्रमते राजगृह में, हुआ विश्वनन्दी युवराज ।
जयिनी विश्वभूति नृप के घर, वह मारीचि जीव सिरताज ॥

८४

इसी विश्वनन्दी के थे, वैसाखभूति सज्जन पितृव्य ।
उसका सुत वैसाखनन्द था, भाई चचेरा घोर अभव्य ॥

८५

विश्वभूति मुनि हुये अंतः, वैसाखभूति संरक्षक थे ।
अल्पायुष्क विश्वनन्दी के, वे न्यायी अभिभावक थे ॥

८६

उद्धत हो वैसाखनन्द ने, उपवन पर अधिकार किया ।
वृक्ष उखाड़ विश्वनन्दी ने, उस पर अतः प्रहार किया ॥

८७

बच कर भागा चढ़ा खंभ पर, वह वैसाखनन्द भयभीत ।
तोड़ा उसे विश्वनन्दी ने, हुई साथ ही आत्म-प्रतीत ॥

८८

विश्वनन्दी वैसाखभूति ने, नग्न दिगम्बर धारा भेष ।
कठिन तपस्याओं के कारण, काया जर्जर हुई विशेष ॥

८९

आहारार्थ एक दिन निकले, विश्वनन्दि मुनि मथुरा ओर ।
आकार एक बैल ने तब ही, उन्हें गिराया देकर जोर ॥

९०

राजमहल की छत पर से, वैसाखनन्द ने देखा दृश्य ।
अट्टहास उपहास सहित बोला, व्यंगोक्तियाँ अवश्य ॥

९१

मुनि निन्दा के घोर पाप से, पाया उसने सप्तम नर्क ।
मंद कषायी विश्वनन्दि मुनि, ने भी पाया दशवाँ स्वर्ग ॥

६२

मुनि वैशाखभूति भी मर कर, उनके साथी देव हुये।
तीनो प्राणी निज कर्मों के, फल भोक्त स्वयमेव हुये॥

६३

विश्वनन्दि वैशाखभूति ने, भोगे स्वर्गिक सौख्य अतीव।
नारायण बलभद्र रूप मे, जन्मे क्रमश दोनो जीव॥

त्रिपृष्ठ नारायण

६४

पोदनपुर के नृपति प्रजापति, 'मृगा' "जया" ये दो वनिता।
क्रमश इनकी माताएँ थी, और प्रजापति पूज्य पिता॥

६५

वह विशाखनन्दी भी नाना, दुर्गतियो को करके पार।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण हो, जन्म अलकापुरी मझार॥

६६

गिरि विजयार्द्ध दिशा उत्तर मे, ज्वलनजटी था एक नरेश।
'स्वयप्रभा' उसकी पुत्री थी, रूप और लावण्य विशेष॥

६७

श्री त्रिपृष्ठ नारायण से उस, स्वयप्रभा का हुआ विवाह।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण को, हुई ज्वलनजटी से डाह॥

६८

बेचारे उस ज्वलनजटी पर, अश्वग्रीव चढकर आया।
मानो सन्मुख देख शेर को, मृग बेचारा घबराया॥

९९

किन्तु न्याय के साक्ष्य हेतु, आये नारायण बलभद्र ।
की सहायता ज्वलनजटी की, अश्वग्रीव से छीना चक्र ॥

१००

प्रतिनारायण का वध करके, बने त्रिपृष्ठ त्रिखंडाधीश ।
किन्तु नियम से नरक जायेंगे, नारायण यों कहें मुनीश ॥

१०१

एक रात्रि गाना सुनते थे, अपने शय्यापाल समीप ।
सुनते सुनते निद्रा के वश, हुये नितांत त्रिपृष्ठ महीप ॥

१०२

गायक शय्यापाल किन्तु था, गाने में इतना तल्लीन ।
राजा के निद्रित होने की, खबर न उनको हुई स्वाधीन ॥

१०३

स्वर-लहरी से निद्रा टूटी, नहीं क्रोध का पारावार ।
गायक के कानों में डाली, गर्म गर्म शीशे की धार ॥

१०४

बव्हारम्भ परिग्रह से या, विषय भोग परिणाम स्वरूप ।
आर्त-रौद्र ध्यानों से मर कर, गया सातवें नर्क कुभूप ॥

त्रिपृष्ठ नारायण का जीव क्रूरसिंह की पर्याय में

१०५

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुःख सहे उसने घनघोर ।
निकल वहाँ से हुआ शेर, वह हिंसक पशु गंगा की ओर ॥

१०६

फल स्वरूप वह प्रथम नरक में पहुँचा पुन आयु कर पूर्ण।
अहंकार मिथ्यात्व आदि सब, विधि के द्वारा होते चूर्ण॥

१०७

किन्तु भव्य जीवों को निश्चय, सम्यक् दर्शन होता है।
इने गिने भव शेष अर्द्ध, पुद्गल परिवर्तन होता है॥

१०८

कल्याण मूर्ति सम्यक् दर्शन, पशु पचेन्द्रिय पा सकता है।
चेतन का भाग-ज्ञान करके, तप से शिवपुर जा सकता है॥

क्रूर सिंह की निकट भव्यता

१०९

प्रथम नर्क से निकल पुन, वह सिंह महा विकराल हुआ।
हिमगिरि की भीषण अटवी में, खग-मृग सब का काल हुआ॥

११०

एक दिवस वह क्रूर सिंह मृग, पर चढ़ने ही वाला था।
दो चारण ऋद्धिधारियों ने, त्योंही जादू कर डाला था॥

१११

जय अजितञ्जय जय अमिततेज, मुनि करुणा के अवतार महा।
सिंह से बोले-ठहरो! ठहरो!!, तुम को वध का अधिकार कहाँ?॥

११२

पर्याय मूढ़ता के द्वारा तुम, तो अनादि से भटक रहे।
तुम आत्म-विपर्यय होकर ही, चहुँगति में औंधे लटक रहे॥

११३

अब अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो ।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर', यह दिव्य दृष्टि द्वारा जानो ॥

११४

मिथ्यात्व सरीखा पाप नहीं, समक्त्व सरीखा धर्म नहीं ।
शोभा तुम को दे सकता है, इस हिंसा का दुष्कर्म नहीं ॥

११५

श्री ऋषभदेव के युग से ले, भव-भव मिथ्यात्व रचा तुमने ।
पाखण्डवाद को फैलाकर, बस आत्म वंचना की तुमने ॥

११६

अब सम्यक् दर्शन धारण कर, श्रावक के व्रत स्वीकार करो ।
हे मृगपति ! पशु निर्दोषों का, मत आगे अब संहार करो ॥

११७

सम्यक्दर्शन सा सुखकारी, तीनों लोकों तीनों कालों ।
मिल सकता कोई धर्म नहीं, सुन लो हे भटके जग वालों ॥

११८

मुनियों के उपदेशामृत सुन, आंखों से आंसू टपक पड़े ।
प्रायश्चित पापों का करके, मृगपति चरणों में लुढ़क पड़े ॥

११९

मुनि वचनों पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा ।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो, युग-युग का मिथ्यात्व भगा ॥

१२०

अब उदासीन श्रावक सा रह, वह अपना समय बिताता था ।
अपने भव-भव के कृत कर्मों पर, बार बार पछताता था ॥

सिंहकेतु देव

१२१

सम्यक्त्व सहित जब मरण किया, सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ।
थी सिंहकेतु संज्ञा उसकी, अरिहन्त भक्त स्वमेव हुआ ॥

१२२

अभिषेक जिनेश्वर का करना, वह सम्यक् दृष्टि भव्य महा।
चैत्यों की नित्य वन्दना से, वह जगा रहा भवितव्य वहाँ ॥

१२३

कनकोज्ज्वल राजकुमार

१२४

सौधर्म स्वर्ग से चय कर फिर, कनकोज्ज्वल राजकुमार हुआ।
देश कनकप्रभ नृपति तब, विद्याधर घर अवतार हुआ ॥

१२५

निर्ग्रन्थों के उपदेशों से, हुआ प्रभावित वैरागी।
सम्यक् तप प्रभाव से पाया, सप्तम स्वर्ग महाभागी ॥

राजा हरिषेण

१२६

आयु पूर्ण कर वह सम्यक्त्वी, अवधपुरी युवराज हुआ।
वज्रसेन सुत हरीषेण नामक, श्रावक सिरताज हुआ ॥

१२७

श्रुत सागर मुनि से दीक्षित हो, यथाकाल निर्ग्रन्थ हुआ।
रत्नत्रय तप से प्रशस्त, उनके द्वारा शिवपंथ हुआ॥

१२८

धर्म और पुण्यों के फल से, प्राप्त हुआ तव स्वर्ग दशम।
सौख्य पूर्ण आयुष्य अन्त में, हुये चक्रवर्ती उत्तम॥

चक्रवर्ती प्रियमित्रकुमार

१२९

पुण्डरीकणी है विदेह में, उसमें ही प्रियमित्रकुमार।
सहस छियाणव राजरानियों, के थे चक्रवर्ति भरतार॥

१३०

कोटि अठारह अश्व और गज, थे जिनके चौरासी लाख।
मुकुटवद्ध राजा सेवक थे, सहस तीस द्वय आगम साख॥

१३१

एक समय यह चक्रवर्ति नृप, पहुँचे समशरण में थे।
वैदेही जिन क्षेमंकर के, पावन-पुण्य चरण में थे॥

१३२

संसार देह भोगों से होकर, वीतराग तप धारा।
स्वर्ग द्वादशम चक्रवर्ति ने, पाया उसके द्वारा॥

युवराज नन्द

१३३

आयु पूर्ण कर चय कर आये, छत्राकार नगर में।
नन्दिवर्द्धनम् वीरवती दम्पति, के पावन घर में॥

१३४

नन्द नाम युवराज हुआ वह, शुभ सम्यक्त्वी श्रावक ।
'प्रोष्ठिल' मुनि से दीक्षा धारी, तज विषयों की पावक ॥

१३५

अर्हत् केवली पाद-मूल मे, भाई सोलह कारण ।
भावनाएँ जो पुण्य-प्रकृति का, सब श्रेष्ठ है साधन ॥

१३६

तीर्थंकर पद की महिमा को, गा न सकें गणधर ।
सुरपति-सरस्वती फणपति भी, पूज उनको हरिहर ॥

१३७

ऐसी पुण्य प्रकृति का बन्धन, करके काया त्यागी ।
स्वर्ग षोडसम् अच्युत मे, वे इन्द्र हुये बडभागी ॥

१३८

निरत तत्त्व चर्चा मे रहकर, आयु पूर्ण होने पर ।
'महावीर श्री' सिद्धार्थ सुत, आये त्रिशला के उर ॥

त्रिशलानन्दन का गर्भावतरण

१३९

अढाई हजार वर्ष पहिले जो आध्यात्मिक सत्क्रान्ति हुई थी ।
परम अहिंसक 'महावीर श्री', द्वारा जग मे शान्ति हुई थी ॥

१४०

प्रियकारिणी 'श्री-सिद्धारथ', जिनके जननी और जनक थे ।
वैशाली गणतन्त्र राज्य मे, वे न्यायी अनुपम शासक थे ॥

१४१

अच्युत स्वर्ग से उतर इन्द्र, प्रियकारिणी की कुक्षि पधारे ।
आषाढ़ी षष्ठी शुक्ला को हुये, पूर्ण गर्भोत्सव सारे ॥

१४२

पन्द्रह महिने तक देवों ने, पृथ्वी पर बरसाये हीरे ।
माता ने देखे शुभ सोलह, सपने सार्थक धीरे धीरे ॥

१४३

स्वर्गों की छप्पन कुमारियां, जननी की परिचर्या करतीं ।
विविध पहेली बूझ बूझ कर, गर्भ-भार माता का हरतीं ॥

वीरश्री का मांगलिक जन्म महोत्सव

१४४

चैत्र सुदी शुभ त्रयोदशी को, हुआ जन्म कल्याणक भारी ।
इन्द्रों द्वारा पांडुक-वन में, अभिषेकों की हुई तैयारी ॥

१४५

इन्द्राणी ने मायामय शिशु, सौर-भवन में सुला दिया था ।
इन्द्रों से मिल सपरिवार शिशु, वर्द्धमान अभिषेक किया था ॥

वर्द्धमान श्री के शैशव की वीरोचित क्रीडाएँ तथा

तारुण्य मे अनासक्ति

१४६

शैशव सुलभ बाल लीलाएँ, लोकोत्तर थी वर्द्धमान की।
सजय-विजय मुनीश्वर चारण, की शकाये समाधान की॥

१४७

ज्योही शिशु को देखा उनने, उन्हे तत्त्व का वोध हो गया।
वर्द्धमान का नाम करण तव, सन्मति से सवोध हो गया॥

१४८

अष्ट वर्ष के वालक सन्मति, थे सम्यक्त्वी अणुव्रत धारी।
समचतुस्र सस्थान देह की, धूम त्रिलोकी मे थी भारी॥

१४९

'सगम' नामक एक देव तव, शक्ति परीक्षा लेने आया।
महा भयकर नाग रूप धर, उसी वृक्ष पर जो लिपटाया॥

१५०

जिस पर खेल रहे थे सन्मति, साथी सयुत अन्ड-डावरी।
उतरे फण पर निडर पैर रख, देव क्रिया हुई वावरी॥

१५१

अत तभी से वर्द्धमान शिशु, सन्मति महावीर कहलाये।
वश मे किया मत्त हाथी जव, तव से नाम वीर का पाये॥

१५२

धर्म नाम पर जीवित नर-पशु, वैदिक युग मे होमे जाते।

स्वाथ लोभ वश पंडों द्वारा, टिकट स्वर्ग के वांटे जाते ॥
१५३

नग्न नृत्य देखा हिंसा का, धर्म नाम पर आत्म भ्रान्ति को ।
देखा करुण-किशोर वीर ने, अतः जगाया लोक क्रान्ति को ॥
१५४

उसी क्रान्ति के फलस्वरूप ही, आज न दिखती वैदिक हिंसा ।
महावीर से गांधी युग तक, जीवित है सत् शान्ति अहिंसा ॥
१५५

शूद्रों के प्रति घोर घृणा का, छुआछूत का भूत भगाया ।
ऊँच-नीच का भेद हटाकर, नारी स्वातन्त्र्य जगाया ॥
१५६

घोर परिग्रह स्वार्थवाद ने, गड़बड़ कर दी सभी व्यवस्था ।
धर्म और नैतिकता महँगी, भ्रष्टाचार हुआ था सस्ता ॥
१५७

उस युग का यह दृश्य देख कर, तरुण वीर ने दृढ़ प्रण कीना ।
और लोक हित तथा आत्म-हित, करने ब्रह्मचर्य व्रत लीना ॥
१५८

लावण्य अलौकिक था किशोर का, आये शत विवाह प्रस्ताव ।
माँ का आग्रह हुआ पराजित, देख वीर का शील स्वभाव ॥
१५९

विरागी वीर का दीक्षा तथा तप कल्याणक

युवा वीर ने तीस वर्ष तक, सफल संभाला युवराजत्व ।

बाल ब्रह्मचारी गृहस्थ रह, देखा जग का निसारत्व ॥

१६०

मगसिर कृष्णा दशमी के दिन, राज-पाट वैभव ठुकराकर ।
वीर विरागी ने तन-मन से, दिगम्बरत्व का दीप जलाकर ॥

१६१

ॐ नमः सिद्धेभ्य पूर्व केशों, का लुंचन कर डाला ।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक, पर लाये अनुमोदन माला ॥

१६२

ज्ञातृखड नामक अरण्य की ओर, चली चन्द्रप्रभा पालकी ।
मानव सुर गण द्वारा वाहित, भावलिङ्ग मुनि वीर बाल की ॥

१६३

आत्म स्वभाव साधना बल से, बारह वर्ष किया तप भारी ।
अट्ठाईस मूल गुण पालन करते, चतुर ज्ञान के धारी ॥

उपसर्ग एवं परीषह विजयी महाश्रमण महावीर

१६४

मासों के उपवासी प्रभु के, आहारों की सविधि आकडी ।
परीषहों की उपसर्गों की, क्षम सहिष्णुता बहुत कड़ी ॥

१६५

चले उसी वन वीर जहाँ वह, सर्प चण्डकौशिक रहता था ।
जहरीले फुंकारों से जो, दावानल बनकर दहता था ॥

१६६

क्रोधित होकर ज्योंही उसने डसा, वीर प्रभु के मृदु-पग में ।
लगी निकलने धार दूधिया, त्योंही अंगूठे की रग में ॥

१६७

सौंप गया वह पशु गण अपने, महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापस ले लूंगा मैं, उसने ऐसा ही चाहा था ॥

१६८

किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को, इन बातों से था क्या मतलब ।
अतः दुष्ट ने कर्ण युगल में, कीला ठोक दिया ही था तब ॥

१६९

ग्यारहवाँ 'भव' रुद्र वीर के, तप की कठिन परीक्षा लेने ।
उज्जयिनी के श्मशान में, जोर जोर से लगा गरजने ॥

१७०

विविध भयावह विद्रूपों से, तथा सहस्र सेनाओं द्वारा ।
शेर - बाघ - चीते - मायावी, आंधी - वर्षा - मूसल धारा ॥

१७१

कान - खजूरे - बिच्छू - विषधर, डाँस आदि तन पर लिपटाये ।
रुद्र देव कृत उत्पातों से, किन्तु 'वीर' नहिं रंच डिगाये ॥

१७२

धीर-वीर-गंभीर सौम्य थी, शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा ।
आत्म शक्ति से हार गई थी, क्षुद्र रुद्र की माया रुद्रा ॥

१७३

रुद्र रौद्र परिणामों द्वारा नरक, आयु का पात्र हो गया ।
सु-विख्यात अति वीर नाथ का, तप कर स्वर्णिम गात्र हो गया ॥

१७४

लोक विजेता महामल्ल सब, काम-सुभट योद्धा से हारे।
रंभा और तिलोत्तमाओं पर, हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे॥

१७५

तप से विचलित करने प्रभु को, अप्सराओं ने हाव-भाव से।
खूब रिझाया महावीर को, हार गई पर ब्रह्म-भाव से॥

१७६

पर ब्रह्म मे लीन तपस्वी, डावाडोल हुआ नहि किञ्चित्।
प्रलय-पवन से हिलें शैल पर, मन्दराद्रिर्नहिचलितकदाचित्॥

पद दलिता चंदना के हाथो महावीरश्री द्वारा आहार ग्रहण

१७७

वैशाली गणतंत्र, संघ के, अधिनायक राजा चेटक थे।
महावीरश्री के मातामह, वे तो जनकसुता-सप्तक थे॥

१७८

राजकुमारी सती चंदना, कन्या थी षोडस वर्षीया।
अपहृत एवं पितृ वियुक्ता, त्रस्ता सुन्दरि अति कमनीया॥

१७९

क्रीता दासी केश मुंडिता, दलिता दुखित वन्दिनी थी।
खाने को कोदो के दाने, सेठानी से पाती थी॥

१८०

षण् मासिक उपवासी प्रभुवर, आहारार्थं निकलते हैं।
उपर्युक्त अनुसार आखडी, की विधि लेकर चलते हैं॥

१८१

उस अभागिनी दासी ने, जव महा श्रमण को पडगाहा ।
टूटीं जंजीर गुलामी की, देवों ने सौभाग्य सराहा ॥

१८२

कोदों के दाने खीर वने, फिर निरन्तराय आहार हुआ ।
पंचाश्चर्य चन्दन दासी का, सचमुच पतितोद्धार हुआ ॥

अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ महावीर

१८३

द्वादश तप द्वादश वर्षो तक, करते रहे श्रमण भगवान् ।
शुक्ल ध्यान से क्षपकं श्रेणि, चढ़ पहुँचे बारहवें गुण थान ॥

१८४

प्रकृति तिरेसठ कर्म घातिया, किये नष्ट अरिहंत हुये ।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी, त्रे केवलि भगवंत हुये ॥

१८५

ऋजुकूला सरिता के तट पर, महावीर सर्वज्ञ वने ।
बैसाखी शुक्ला दशमी को, देवोत्सव भी हुये घने ॥

वीर श्री की विराट् धर्म-सभा की अलौकिक छटा

१८६

देवेन्द्रों द्वारा रचित सभा, मंडप वैभव युत समवशरण ।
त्रय गोलाकार प्रकोट सहित, विस्तृत सर्वोदय का कारण ॥

१८७

मानाङ्गण मे चौपथ चौदिशि, जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खडे ।
उनके आगे सरवर सुन्दर, पुनि प्रथम कोटि मे रजत जडे ॥

१८८

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि, दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है, द्वारो पर भवनो के किरीट ॥

१८९

पुनि कल्पवृक्ष वन मे मुनि सुर, के बने हुये हैं सभा-भवन ।
है मणिमय कोट तृतीय रचा, द्वारो पर कल्पो के सुर-गण ॥

१९०

पुनि लता-भवन स्तूप आदि, श्री मडप क्रमश तने हुये ।
है केन्द्र स्थल मे गधकुटी, चहुं दिशा कक्ष हैं बने हुये ॥

१९१

इन बारह कक्षो मे क्रमश, मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ ।
ज्योतिष व्यन्तर भवनत्रिक, की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ ॥

१९२

फिर देव-भवन व्यन्तर ज्योतिष, अरु कल्पवासि नर पशु के हैं ।
ये सभी सभ्य श्रोता वनचर, सन्मति वाणी को सुनते हैं ॥

महावीर श्री के प्रमुख गणधर का अविर्भाव

१९३

उस गधकुटी कमलासन पर, हैं अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान ।
है समवशरण के जीव सभी, दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान ॥

१६४

सर्वज्ञ केवली हुये वीर, फिर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी ।
छियासठ दिन यद्यपि वीत गये, फिर भी मौनी हैं वीर श्री ॥

१६५

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र, इसका रहस्य जब जान चुका ।
तब वृद्ध विप्र का स्वाँग बना, गुरू कुलाचार्य के निकट रुका ॥

१६६

जो पंच शतक निज शिष्यों को, वेदान्त पढ़ाया करता था ।
निज विद्या-प्रतिभा का मिथ्या, बस दम्भ सदा ही भरता था ॥

१६७

उस युग ने लोहा माना था, उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का ।
था याज्ञिक क्रिया कांड वेत्ता, ज्ञाता था नाना अर्थों का ॥

१६८

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय, पर यदि उसमें सम्यकता है ।
तो वन्दनीय वह देवों से, वरना वह कोरा मिथ्या है ॥

१६९

था 'इन्द्रभूति' गौतम बहुश्रुत, आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था ।
पर गणधर होने योग्य पात्र, बस एक मात्र वह द्विज ही था ॥

२००

जिनवर वाणी जो झेल सके, उस युग का ऐसा योग्य पात्र ॥
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा में, था इन्द्रभूति ही एक मात्र ॥

२०१

इसलिए वृद्ध का स्वाँग बना, वह इन्द्र विप्र को ले आया ।
उस समवशरण की ओर जहाँ, था मानथम्भ उन्नत काया ॥

२०२

फिर क्या था गौतम ज्ञानी का, मिथ्या-मद सारा चूर हुआ ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था, मिथ्यात्व अघोग दूर हुआ ॥

२०३

सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ, सन्मति का गणधर बन पहला ।
श्रुत द्वादशाग मे भाव गूथ, जिनवाणी अमृत रहा पिला ॥

तीर्थंकर भगवान् महावीर के अमर सदेश

२०४

जिस दिवस दिव्यध्वनि खिरी, प्रथम वह सावन कृष्णा थी पावन ।
तिथि महावीर के शासन की, प्रतिपदा मागलिक मन भावन ॥

२०५

विपुलाचल मे दिया गया जो प्रथम देशना का सदेश ।
गौतम गणधर ने गूथा है, उसको ही सामान्य-विशेष ॥

२०६

वीतरागता परम अहिसा, स्याद्वाद सर्वोदय ही ।
कर्मवाद निरुपवाद है, द्वादशाग वाणी मय ही ॥

२०७

पर द्रव्यों से भिन्न सर्वथा, ज्ञान, ज्योति हर चेतन है ।
स्वाभाविकता वीतरागता, वैभाविकता बन्धन है ॥

२०८

जीने का अधिकार सभी को, स्वय जियो जीने भी दो ।
शेर गाय को एक घाट पर, करुणा-जल पीने भी दो ॥

२०६

आत्मा को प्रतिकूल लगे जो, औरों को भी वह प्रतिकूल ।
नहीं; चुभाओ अतः किसी को, कभी दुःख हिंसा के शूल ॥

२१०

अपने वीतराग चेतन में, राग-द्वेष का प्रादुर्भाव ।
खुद की हिंसा करने वाला, कहलाता है हिंसक भाव ॥

२११

उसी भाव हिंसा के द्वारा, औरों की हिंसा करना ।
संकल्पी उद्यमी विरोधी, आरम्भी हिंसा कहना ॥

२१२

है अनन्त गुण सत्ता वाला, जड़ चेतन प्रत्येक पदार्थ ।
हर पहलू से उसे देखना ही, है सम्यग्दृष्टि यथार्थ ॥

२१३

स्याद्वाद का सत्य कथञ्चित्, मुख्य गौणता पर निर्भर ।
पूरक बन कर वहा रहा है, धर्म समन्वय का निर्झर ॥

२१४

साम्यवाद या सर्वोदय का, जीता जागता उदाहरण ।
था समाजवादी रचना मय, महावीर का समवशरण ॥

२१५

भेद भाव से भिन्न आत्मा, पृथक लोक व्यवहारों से ।
परमातम का रूप लिये, निश्चयतः विविध प्रकारों से ॥

२१६

जैसी करनी वैसी भरनी, यही कर्म का नियत विधान ।
पुण्य-पाप के फल सुख-दुख हैं, जानो जग को कर्म प्रधान ॥

२१७

केवल ज्ञाता-दृष्टा रह कर, पुण्य-पाप के देखो खेल ।
हर्ष-विषादों की लहरों को, समता-सागर बन कर झेल ॥

२१८

अष्ट कर्म पर विजय प्राप्त कर, लेना है उत्तम पुरुषार्थ ।
नहीं बैठना भाग्य भरोसे, कर्म वाद सिद्धान्त यथार्थ ॥

२१९

सग्रह और परिग्रह धन का, है तृष्णा का घृणित स्वरूप ।
पर पदार्थ से भिन्न सर्वथा, परम अकिंचन है चिद्रूप ॥

२२०

आवश्यकताओं की मर्यादाओं, मे बाहर जाना ।
घोर पाप है यहाँ स्वार्थ, मय विषमताओं का उपजाना ॥

देश-विदेश में वीर श्री की पद यात्राएँ

२२१

अर्हन्केवली वर्द्धमान का, प्रवचन हेतु विहार हुआ ।
वैशाली वाणिज्य ग्राम मे, समवशरण तैयार हुआ ॥

२२२

अ ग कलिंग सुकोशल अश्मक, मालव हेमागद पाचाल ।
वत्स दशार्णव सौर देश मे, समवशरण था रचित विशाल ॥

२२३

इस चैतन्य क्रान्ति की लहरों, ने युग का प्रक्षाल किया ।
भीगा रस से कोना कोना, लोकत्रय खुशहाल किया ॥

वीर शासन से प्रभावित व्यक्तित्व

२२४

श्रमणोत्तम गौतम इत्यादिक, ग्यारह प्रमुख संघ गणधर थे ।
वारिषेण आदिक अट्ठाईस, सहस्र विविध ज्ञानी मुनिवर थे ॥

२२५

छत्तीस सहस्र आर्यिकाओं में, सर्व प्रथम थी सती चंदना ।
श्रावक और श्राविका चौलख, करें वीर की सतत वन्दना ॥

२२६

श्राविकोत्तम राजा श्रेणिक, विम्वसार थे संघ अग्रणी ।
महिलाओं की संघ नायिका, सम्यक्त्वी थी राज्ञि चेलनी ॥

२२७

वीर संघ के समवशरण में, थे शतेन्द्र नर-सुर-विद्याधर ।
पशु-पक्षी तिर्यञ्च सभी थे, महावीर स्वामी के अनुचर ॥

२२८

राजा श्रेणिक वौद्ध धर्म तज, क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाते ।
वर्द्धमान के पद-मूल में, भावी तीर्थङ्कर पद पाते ॥

२२९

साठ हजार किये प्रभुवर से, प्रश्न उन्होंने समवशरण में ।
फल स्वरूप अनुयायी वन कर, भूमण्डल ही गिरा चरण में ॥

२३०

एक कूप मंडूक भक्ति वश, कमल पंखुड़ी लेकर आया ।
क्षेणिक के गजराज पैर से, कुचल शीघ्र ही सुर पद पाया ॥

२३१

विश्रुतवर से चोर तथा, अर्जुनमाली से डाकू निर्दय।
आत्म समर्पण वीर चरण में, करके बने मुनीश्वर निर्भय॥

२३२

श्रावक था आनन्द नाम का, भूमि और पशु-धन का स्वामी।
कर प्रमाण परिग्रह का वह, बना वीर प्रभु का अनुगामी॥

२३३

इस प्रकार प्रभु वीतराग के, परम अहिंसा मयी धर्म मे।
हुआ प्रभावित सारा ही युग, जिन-शासन के गूढ मर्म से॥

महावीर श्री का परिनिर्वाण महोत्सव एव दीपावली का शुभारम्भ

२३४

तीस वर्ष तक महावीर श्री, ने सब जीवो को सबोधा।
और एक दिन पावापुर के, उपवन मे आ योग निरोधा॥

२३५

कार्तिक कृष्ण अमावस की थी, सु-प्रभात वह मगल वेला।
सिद्धालय मे हुआ विराजित, सन्मति प्रभु का जीव अकेला॥

२३६

अष्ट कर्म कर नष्ट सिद्ध पद, पा जाते हैं त्रिशला-नन्दन।
ज्ञान शरीरी सिद्ध प्रभू के, चरण-कमल मे शत शत वन्दन॥

२३७

पावन पावापुर की धरती, धन्य धन्य उसका उद्यान ।
देवेन्द्रों ने जहाँ मनाया, कल्याणक उत्सव निर्वान ॥

२३८

मणिमय शिविका में स्थित वह, प्रभु की परमौदारिक देह ।
पूजन-अर्चन कीर्ति-सुरभि से, लोक व्याप्त थी निः सन्देह ॥

२३९

अग्निकुमार देव नत मुकुटों द्वारा, प्रकटित हुई कृशानु ।
उसके द्वारा दग्ध हुये उनके, कर्पूरी तन परमानु ॥

२४०

फिर विभूति-रज लौकिक जन, के माथों का श्रृङ्गार बनी ।
पावापुर के रम्य जलाशय, का आगे आधार बनी ॥

२४१

रत्नवृष्टि करके देवों ने, पावापुर जगमगा दिया ।
कार्तिक कृष्ण अमावश निशिका, मोह महातम भगा दिया ॥

२४२

तब से अब तक लौकिक युग ने, यहाँ मनाई दीपावलियां ।
वीर-चरण में इस प्रकार की, सतत समर्पित श्रद्धाञ्जलियां ॥

२४३

केवल ज्ञान मोक्ष लक्ष्मी की, पूजन वर्द्धमान पूजन है ।
लौकिक लक्ष्मी की उपासना, भव-भव दुखकारी बन्धन है ॥

वर्द्धमानश्री की सार्थकता

२४४

इन पच्चीस शतक वर्षों मे, बदल चुका इतिहास जगत का ।
भौतिकता की चकाचौंध मे, विस्मृत हुआ नाम भगवत का ॥

२४५

अवसर्पिणि कलिकाल पाचवा, इसमे सब कुछ हीयमान है ।
वीर-पथ पर चलने वाला, चेतन ही बस वर्द्धमान है ॥

युग-युग की मगल कामनाएँ

२४६

महा गर्भ-कल्याणक धारी, महावीर कल्याण करो ।
महा जन्म-कल्याणक धारी, वर्द्धमान भव त्राण हरो ॥

२४७

दीक्षा - कल्याणक धारक, हे वीर नाथ मगल कारी ।
केवल ज्ञान-भानु प्रकटाओ, हे सन्मति केवल धारी ॥

२४८

परम मोक्ष कल्याणक पथ पर, हे अतिवीर लगा देना ।
पच परम गुरू के वचनो से, भव-भव हमे जगा देना ॥

२४९

पच्चीस शतक वों यह शताब्दी, युग युगान्त तक रहे अमर ।
महावीर का जीवन दर्शन, अनुप्राणित होये घर-घर ॥

जिनशासन की कीर्ति पताका
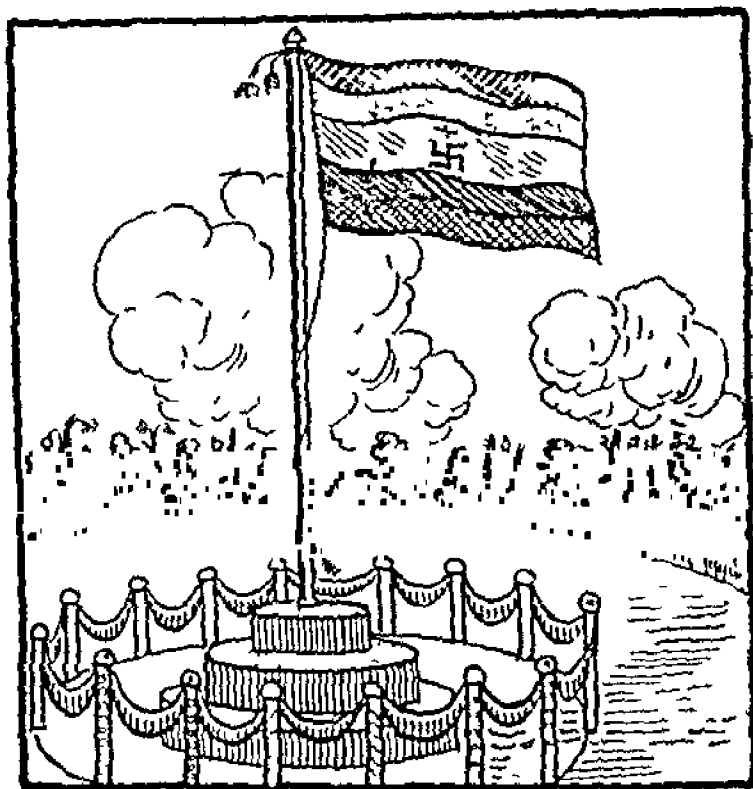
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान् ।
ऋषभदेव से महावीर तक, करे सु-मंगल गान ॥
पँचरंग पाँचो परमेष्ठी युग को दें आशीष ।
विश्व-शान्ति के लिये झुकावें, पावन ध्वज को शीष ॥
जिन की ध्वनि जैन की संस्कृति, जग जग को वरदान ।
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान ॥

समर्पण
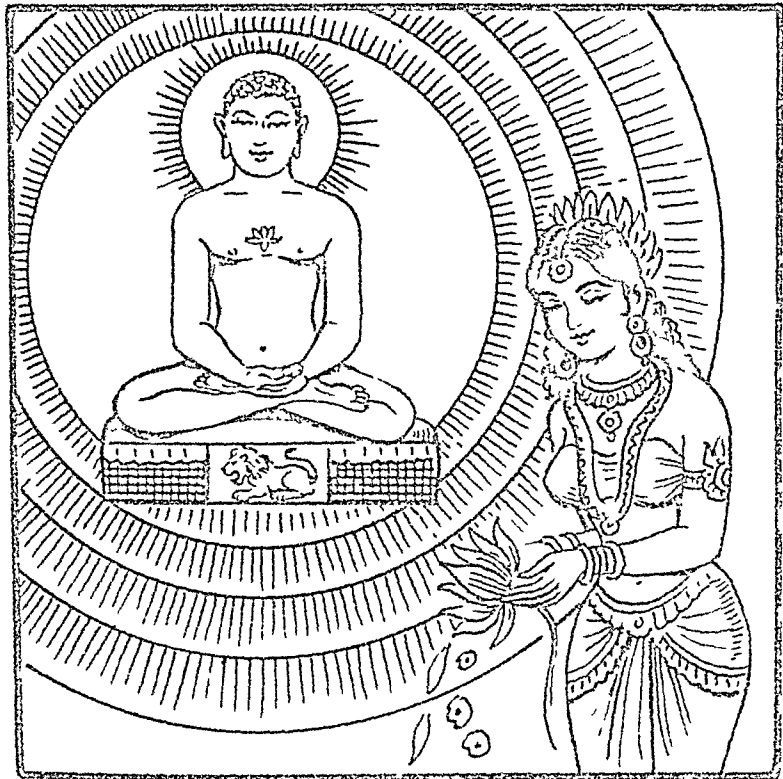
जिनका केवल ज्ञान चराचर, लोकालोक विलोकी दर्पण ।
महावीर श्री चित्र-शतक यह, उनके ही चरणो मे अर्पण ।।
यद्यपि यह उपचार मात्र है, तो भी निश्चय जागरूक है ।
वाचक जितना ही मुखरित है, उतना ही यह वाच्यमूक है ।।

अर्चना
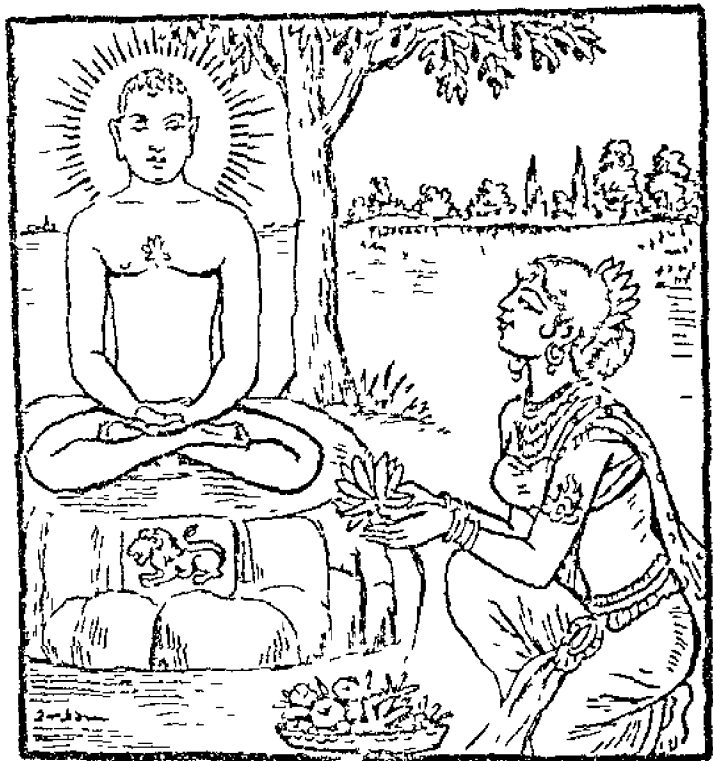
श्रद्धा के मणि मुक्ता कण से स्वर्णिम सजी ज्ञान मंजूषा ।
तपश्चरण पर करें निछावर मंजु रश्मिमयी मंगल ऊषा ॥
शुक्ल ध्यान की केवल किरणें केन्द्रीभूत हुई हैं ।
तेज भाव से कर्मग्रन्थियां भस्मीभूत हुई हैं ॥

जैन प्रतीक तथा वर्द्धमान कीर्ति स्तम्भ
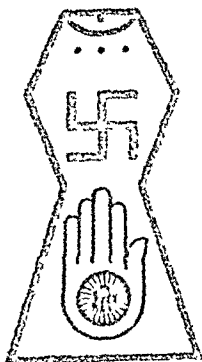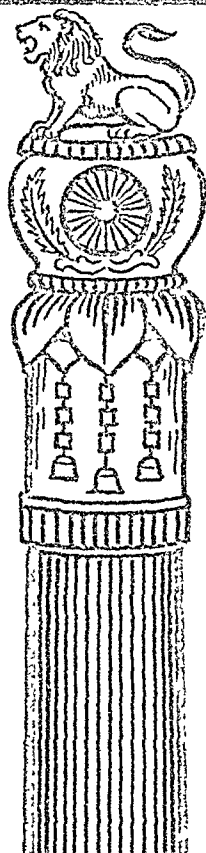
जय पच परम गुरु वर्द्धमान—
जय लोक शिखर पर विद्यमान
रत्नत्रय परम अहिंसा के—
उद्‌बोधक स्वस्तिक समाधान
उपकार परस्पर करे जीव—
चौ गति से पाएँ छुटकारा।
युग युग यह अमर प्रतीक रहे—
घर घर गूंजे जय का नारा ॥

वर्द्धमान की अमर कीर्ति का, स्मारक स्तम्भ यही।
वीतराग-विज्ञान कला का, करता है प्रारम्भ यही ॥
अनेकांत अपरिग्रह एवं, परम अहिंसा की जय हो।
धर्मचक्र सा हो अशोक, ऐव मृगेन्द्र सा निर्भय हो ॥

वर्द्धमान प्रतीक
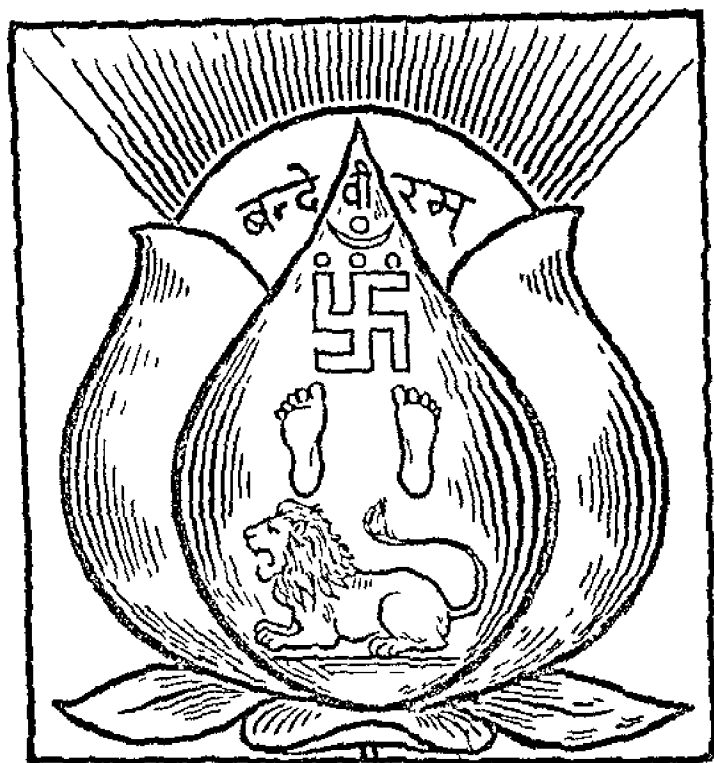
जिनने अपने को जीता हो, उनको महावीर कहते हैं ।
उनके स्वस्तिक चरण कमल युग, मेरे चेतन में रहते हैं ।।
रवि-प्रताप शशि शीतलता का, सिंह वीरता का प्रतीक है ।
महावीर का जीवन-दर्शन, तो नितान्त ही शोभनीक है ।।

वीर-शासन-चक्र
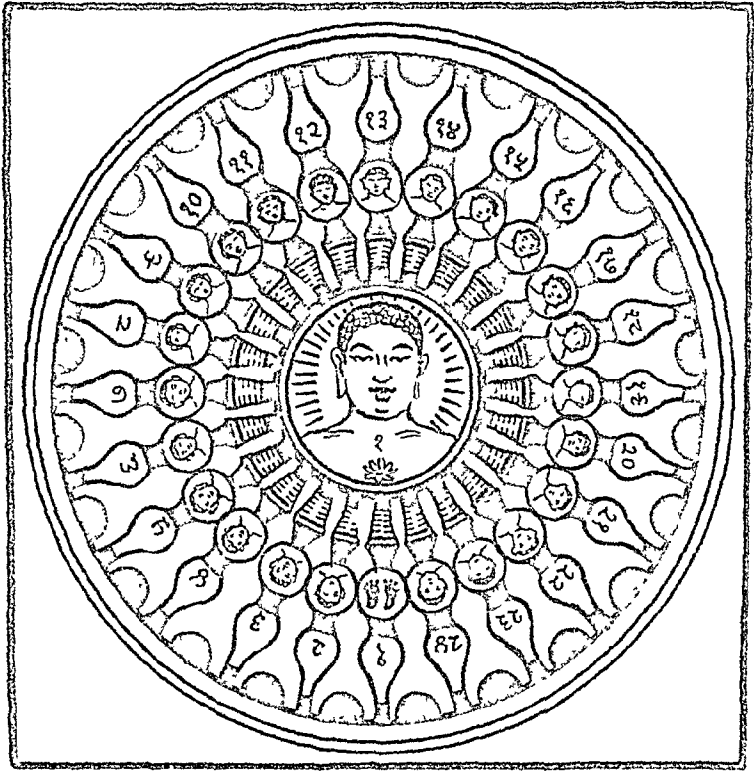
भरत क्षेत्र की कर्मभूमि में, तीर्थंकर होते आये।
वे अनादि से आत्मतत्व का, अनुशासन बोते आये॥
अमर रहें ऐसे जिनशासन, के ये चौबीसों आरे।
आदि और वीरान्त प्रभू के रहें गूँजते जय-नारे॥

धर्म-चक्र
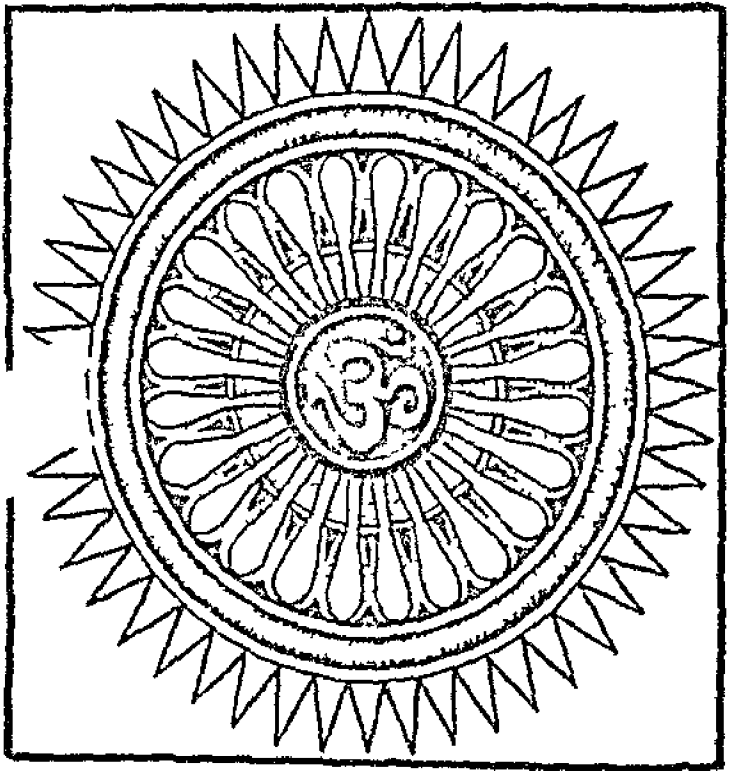
समवशरण के आगे आगे धर्म-चक्र जो चलता है।
तीर्थंकर के अतिशय पुण्यों की यह परम सफलता है।।
धर्म-चक्र से हो संचालित प्राणि मात्र का जीवन हो।
ज्ञान चरित जीवन के आगे सम्यक चक्र सुदर्शन हो।।

"ॐ"

षोडस अलंकारों से विभूषित युवराज वर्द्धमान

(१)

यद्यपि श्रीवर वर्द्धमान की है शृंगार प्रस्तुत प्रतिमूर्ति ।
तो भी इसे न समझा जाय परिग्रह भूषण की पूर्ति ॥

(२)

यद्यपि झलकती इसमें उनकी अनासक्त गृहस्थावस्था ।
इसको त्याग दिगम्बर मुद्रा धारेंगे सौम्यावस्था ॥

(३)

अलंकार थे इस प्रकार उन राजकुमार सलोने के ।
मणि माणिक्य जवाहर हीरे मोती चांदी सोने के ॥

(४)

शेखर कंकण चंचल कुण्डल अंगद कर्णफूल केयूर ।
ग्रैवेयक आलम्बन मुद्रा कटीसूत्र मंजीर प्रपूर ॥

(५)

कटक पदक श्रीवत्स मध्यमधर सुंदरतम आभूषण ।
पट्टहार युत अलंकार शुभ सोलह करते थे धारण ॥

(६)

अपने जीवन काल मध्य क्या ? पूजे जाते थे युवराज ।
हाँ उसकी साक्षी में प्रतिकृति तत्कालीन मिली है आज ॥

(७)

राज मुकुट आभूषण मंडित वर्द्धमान जयवन्त रहें ।
ध्यान मग्न त्रिंशत वर्षीय युग कुमार जीवन्त रहें ॥

रत्नगर्भा वसुन्धरा से वीर बिम्ब का आविर्भाव
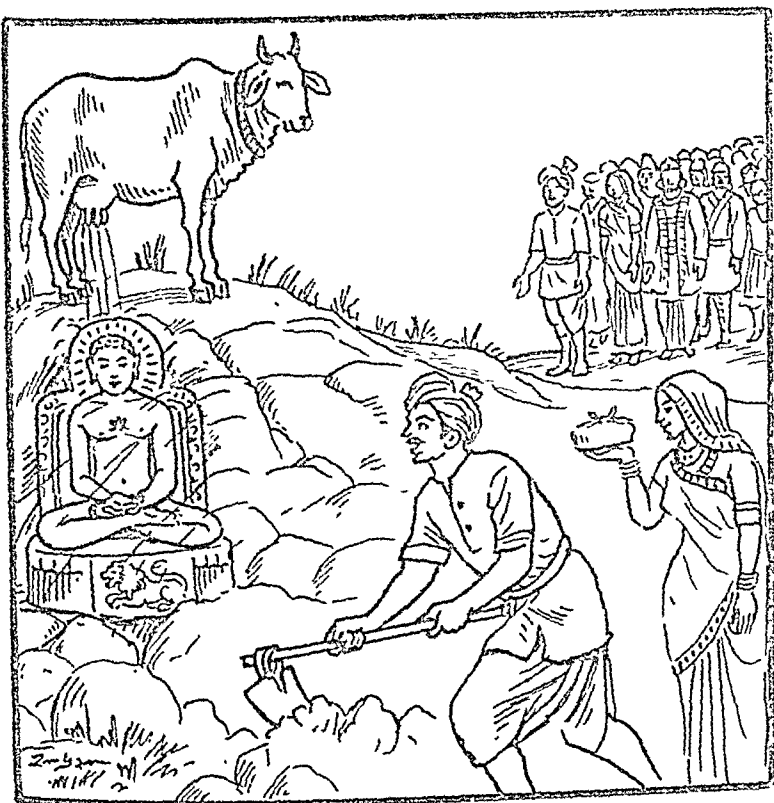
शुभ शकुनों की सत् निमित्त की ऐसी ही कुछ परंपरा है।
जब जब गर्भित मणि रत्नों को प्रकटाती यह वसुंधरा है॥
तब तब वत्सलता की धारा दूधों उन्हें नहाती है।
कामधेनु बन महावीर श्री की प्रतिभा प्रकटाती है॥

हीयमान से वर्द्धमान

प्रथम तीन पर्यायें क्रमशः महावीर की निम्न प्रकार ।
पुरूरवा, सौधर्म स्वर्गसुर, भरत-पुत्र मारीचि कुमार ॥१॥
फिर चौथी से लेकर छटवी पर्यायो का है इतिहास ।
ब्रह्म स्वर्गसुर पतित तपस्वी प्रथम स्वर्ग में पुन निवास ॥२॥
सप्तम से नवमें भव तक फिर उनने यो भव भ्रमण किया ।
पुष्पमित्र पुनि प्रथम स्वर्ग में अग्निमित्र अवतरण किया ॥३॥
दशवाँ ग्यारहवां बारहवाँ, भव क्रमश इस भांति भये ।
सनत्कुमार स्वर्गसुर होकर अग्निभूति माहेन्द्र गये ॥४॥
तेरहवाँ एवं चौदहवाँ भव उनके इस भांति हुए ।
भारद्वाज विप्र मर करके ब्रह्म स्वर्ग मे देव हुए ॥५॥
इसके बाद अनन्त काल तक नर्क निगोद प्रवास किया ।
स्थावर विकलत्रय त्रस में युगों युगो तक वास किया ॥६॥
फिर पन्द्रहवाँ भव स्थावर नामक ब्राह्मण रूप हुआ ।
सोलहवें भव स्वर्ग चतुर्थ जाकर देव अनूप हुआ ॥७॥
सत्रहवाँ भव विश्वनन्दि मुनि महाशुक्र अट्ठारहमा ।
था उनीसवाँ नारायण पद बीसम नारक महानमा ॥८॥
इक्कीस और बाईस तथा तेईस हुए भव यो क्रमशः ।
सिंह नारकी प्रथम नर्क का, सम्यक्त्वी सिंह हुआ पुनः ॥९॥
चौबीस और पच्चीस तथा छब्बीस भवो की पर्यायें ।
सौधर्म स्वर्ग सुर विद्याधर फिर स्वर्ग सातवे पहुंचाये ॥१०॥
सत्ताईस नृपति हरिषेणा महाशुक्र सुर अट्ठाईश ।
चक्रवर्ति उनतीस तीसवे सहस्रार के हुए अधीश ॥११॥
एकतीसवे भव में आये बनकर मुनिवर नन्दकुमार ।
बत्तीसम में लिया जिन्होंने अच्युत स्वर्ग में सुर अवतार ॥१२॥
अन्तिम भव में अच्युत स्वर्ग से चयकर सुत सिद्धार्थ हुए ।
हीयमान से वर्द्धमान यों सिद्ध प्रसिद्ध कृतार्थ हुए ॥१३॥

महावीर पर्याय कल्पद्रुम

पत्ते पत्ते रहा डोलता वैभाविक पर्यायो पर।
जैसी दृष्टि सृष्टि वैसी ही महावीर सदेश अमर ॥
निम्न अवस्थाओ से लेकर ऊँचे से ऊँचे विकास की।
क्रमश झाकी यहाँ देखिये महावीर के मोक्ष वास की ॥

पुरुरवा द्वारा दि० मुनि पर शर-सन्धान

पुरुरवा ने हरिण समझ उन, मुनि पर शर-सधान किया ।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया ॥
बोली नाथ ! रुको मत मारो, ये वन-देव दिगम्वर है ।
आत्मलीन ये पर उपकारी महाव्रती जिन गुरुवर है ॥
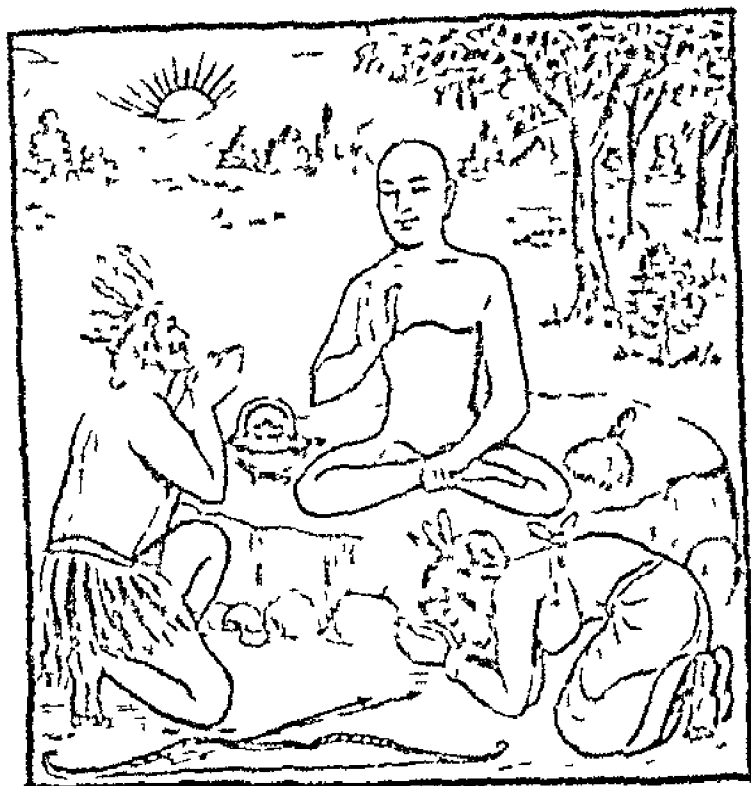
सौधर्म स्वर्ग में पुरुरवा के जीव द्वारा-

धारण कर सम्यक्त्व सहित वह जप तप संयम अणुव्रत शील।
प्रथम स्वर्ग में देव महर्द्धिक हुआ समाधि मरण से भील॥
अतः सपरिकर चैत्य वृक्ष पर स्थित अरिहंतों को नित्य।
भक्ति भाव से पूजा करता था ले अष्ट द्रव्य साहित्य॥

भरत चक्रवर्ति पुत्र मारीचि कुमार

आयु पूर्ण कर देव-भव पर ऋषभदेव का पौत्र हुआ।
भरत चक्रवर्ती के घर में, यह मारीचि सुपुत्र हुआ॥
उसी अयोध्या में चक्री की प्रिया 'धारिणी' के उर से।
सुत मारीचि हुआ मायावी, चय कर सौधर्म सुर से॥

पद भ्रष्ट मारीचि इन्द्र द्वारा प्रताड़ित

जो दिव्यध्वनि अनुसार कभी तीर्थंकर होने वाले है।
वह द्रव्यलिङ्ग मुनि बन भव के वीजों को बोने वाले है॥
तव वन में स्थित देवराज पथ भ्रष्टों को समझाते हैं।
यह वेप दिगम्बर पावन है इसको यों नही लजाते हैं॥

मारीचि द्वारा मिथ्या मत का प्रचार
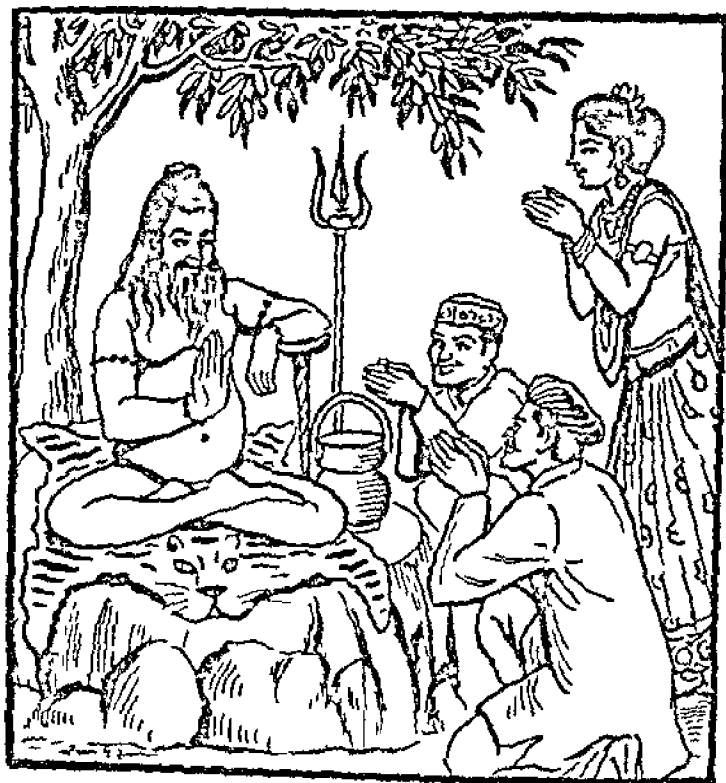
तब होनहार अनुसार बना वह मिथ्यामत का नेता था ।
वह परिव्राजक का रूप धार उपदेश विपर्यय देता था ॥
हाँ, मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा जगत्गुरु कहलाऊँगा ।
उन जैसा ही मैं भी अपना अब पथ अलग अपनाऊँगा ॥

हठयोगी मारीचि ब्रह्म स्वर्ग में

परिव्राजक निज तप प्रभाव से आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया।
ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर तक सब सुख भोगे पूर्णतया ॥
मिथ्या तप के भी प्रताप से मिल जाते जब सुख स्वर्गीय।
तो फिर सत्य तपस्या द्वारा क्यों न मिले फल अद्वितीय? ॥

साख्य मत प्रचारक जटिल ऋषि
(मारीचि का जीव)

ब्रह्मस्वर्ग से चय कर वह मारीचि जीव अवनी पर।
जटिल नाम का पुत्र हुआ द्विज कपिल और काली घर॥
ऋषि बन कर मिथ्यात्व धर्म का उसने अति उपदेश दिया॥
भाँति-भाँति की करी तपस्या एव काय-क्लेश किया॥

कुतप द्वारा सौधर्म स्वर्ग में जटिल ऋषि का जीव

आयु पूर्ण कर उस तापस ने प्रथम स्वर्ग में जन्म लिया।
स्वर्गिक वैभव जिन वंदन में ही निज काल व्यतीत किया॥
भोगों को वह भोग रहा था पर सचमुच वह भुक्त बना।
इसीलिये तो दो सागर तक वह माया से युक्त बना॥

जटिल ऋषि का जीव
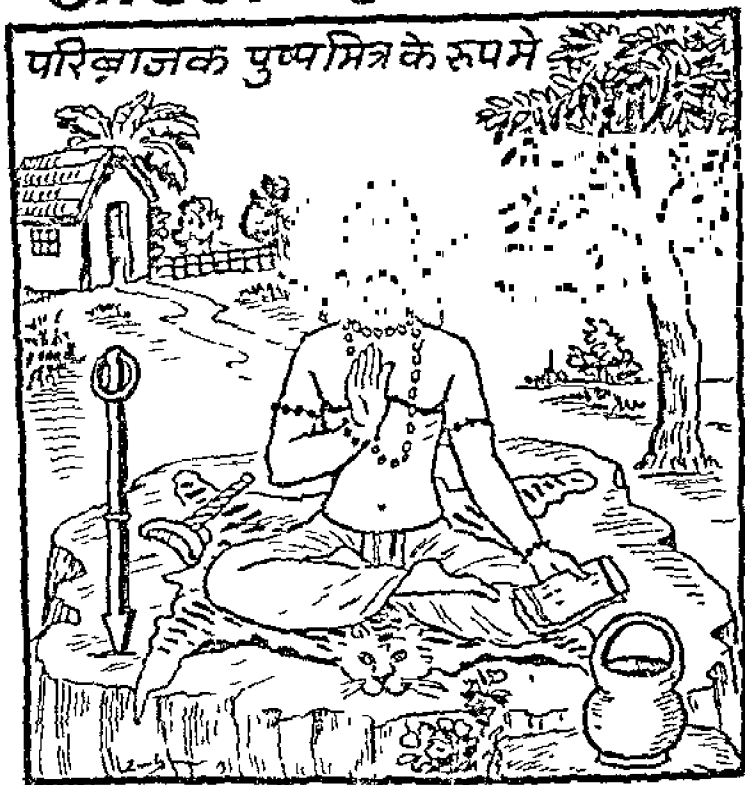
भारद्वाज-पुष्पदत्ता ये भारतीय द्विज दम्पति थे।
इनके सुत मारीचि जीव अब पुष्पमित्र नामक यति थे॥
वे स्वर्गों का वैभव तज कर नगर अयोध्या आये थे।
सांख्य धर्म के उपदेशों से जन-जन को भरमाये थे॥

कुतापसी पुष्य मित्र का जीव

आयु पूर्ण कर पुन--हुये, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी।
क्योंकि तपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी ॥
आयु एक सागर की पाकर, भोगों में तल्लीन हुये।
पुनः उतरना पड़ा वहाँ से, क्योंकि पुण्य फिर क्षीण हुये ॥

पुष्प मित्र का जीव

एकान्त मत प्रचारक मारीच जीव अग्निसह (अग्नि विप्र) ब्राह्मण

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी में, अग्निभूति ब्राह्मण थे ।
प्रिया गौतमी के संग सुख में, करते जो कि रमण थे ।।
वह मारीचि इन्हीं के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का मिथ्यामत स्फुरित हुआ ।।

खोटे तप के प्रभाव से
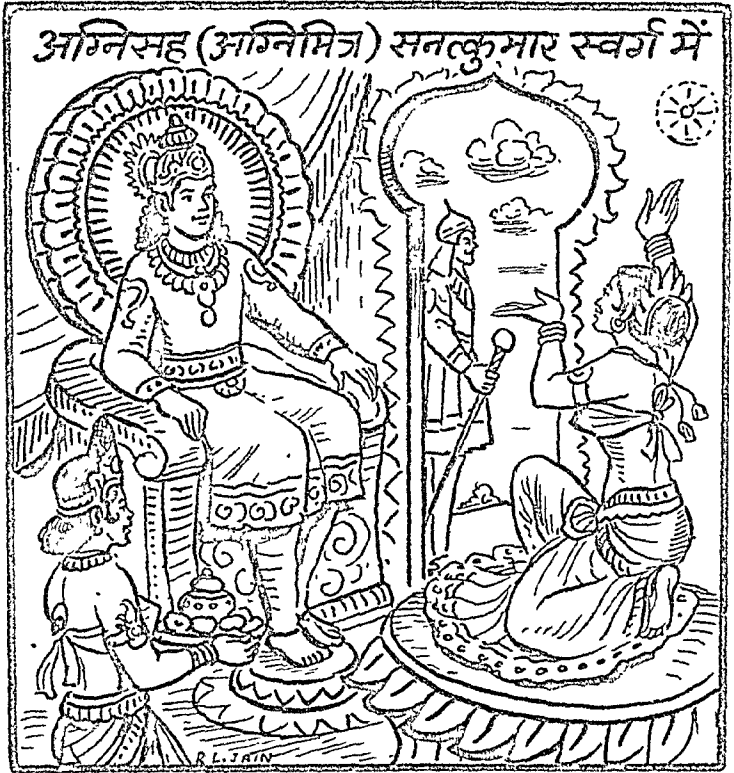
सनत्कुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस ।
सात सागरों तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधुरस ।।
इन्द्रिय जन्य सभी सुख नश्वर, पराधीन बन्धक है ।
बाधा युक्त विषम फल दाता, दुख के उत्पादक हैं ।।
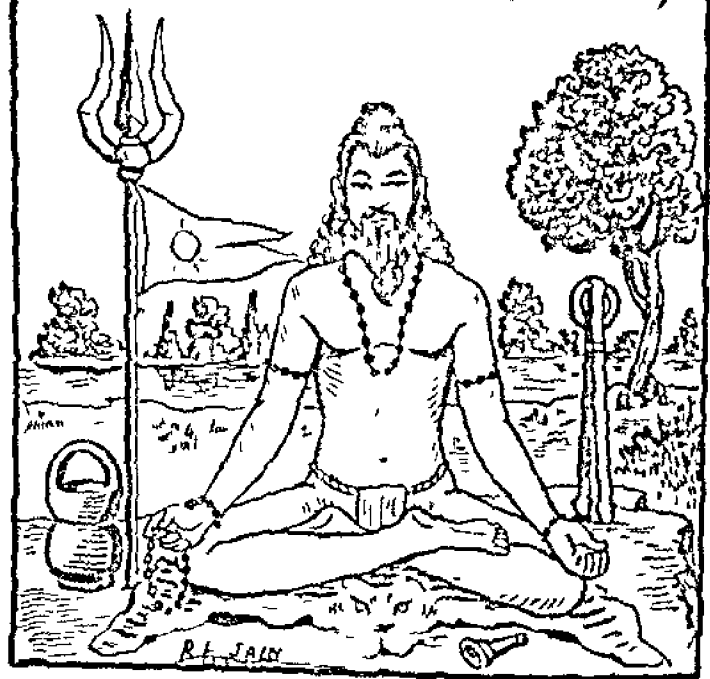
त्रिदंडी साधु अग्निभूत

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर मन्दिर नाम नगर मे ।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदंडी गौतम द्विज के घर मे ॥
मिथ्या शास्त्रो का प्रवचन कर ऐकान्तिक फैलाया ।
बन पत्थर की नाव स्वय ही डूबे और डुबाया ॥

माहेन्द्र स्वर्ग में

(त्रिदंडी साधु अग्निभूत का जीव)

देह त्याग कर साधु त्रिदंडी स्वर्ग पाचवे पहुँचा।
कर्म चेतना का फल भोगा शुभ ऊँचे से ऊँचा ॥
निज ज्ञायक को लक्ष्य बनाने वाली ज्ञान चेतना है।
उसमें विभव विभाव नही है वह स्वभाव ही अपना है ॥

महामिथ्यात्वी बाल तपस्वी भारद्वाज

मातु मंदिरा ब्राह्मणी थी जनक माकल्लायन थे ।
भारद्वाज नाम के उनके सुत बहुश्रुत ब्राह्मण थे ॥
जो कि स्वर्ग से चय कर आये पूर्व सस्कारो वश ।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक बने त्रिदंडी तापस ॥

ब्रह्म स्वर्ग में भारद्वाज ब्राह्मण

फल स्वरूप देवायु बाँध कर, स्वर्ग पाँचवे पहुँचे ।
मंद कषायी बाल-तपस्वी, सुरगनि में ही पहुँचे ॥
पुण्याश्रव को पुण्य बंध को, जब तक संवर माना ।
तब तक मिथ्यात्वी जीवों ने, धर्म नहीं पहिचाना ॥

आलू शकरकंद लहसुन मे, फिर उपजे फिर और मरे।
एक देह मे ही अनन्त अक्षर अनन्तवाँ ज्ञान धरे।
सिद्धो का सुख एक ओर था, उतना उतना ही विपरीत।
दुख निगोद मे नरको से भी, अधिक महा था वचनातीत॥

नरकों की असह्य वेदना
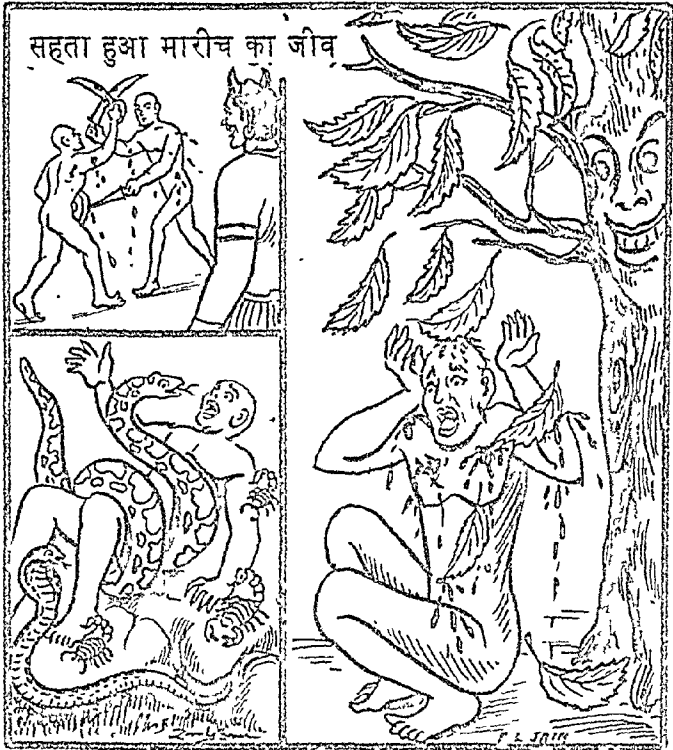
आर्त-रौद्र मोहित परिणामो के फल नरकों मे भोगे ।
खून पीप की वैतरिणी में पहिन वैक्रियक चोगे ॥
एक साथ विच्छू सहस्र मिल, मानो डंक मारते हों ।
सेमर तरु के पत्ते-पत्ते भी तलवार धारते हों ॥

मारीचि जीव का पुन नारकीय जीवन

आपस मे लड टुकडे-टुकडे किये देह के पारावत् ।
ले समुद्र की प्यास बूंद ना भी नरमा वह मिथ्यामत ।।
रवि भी जल कर पिघल जायगा, इतना है भयनाक वहा का ।
शशि भी गल कर बह जायेगा, इतना तीव्र हिमाव वहा का ।।

पंच स्थावरों में भटकता मारीचि का जीव

उम्र तीन दिन-रात रही कई वार अग्नि कायिक होकर।
वायु काय का जीव हुआ यह, तीन हज़ार वर्ष सोकर ॥
दस हज़ार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु ।
ईंधन-राधन-काटन-छेदन-भेदन, दुःख सहे थे निरुपायु ॥

लज्जा जनक हीन पर्यायो का इतिहास
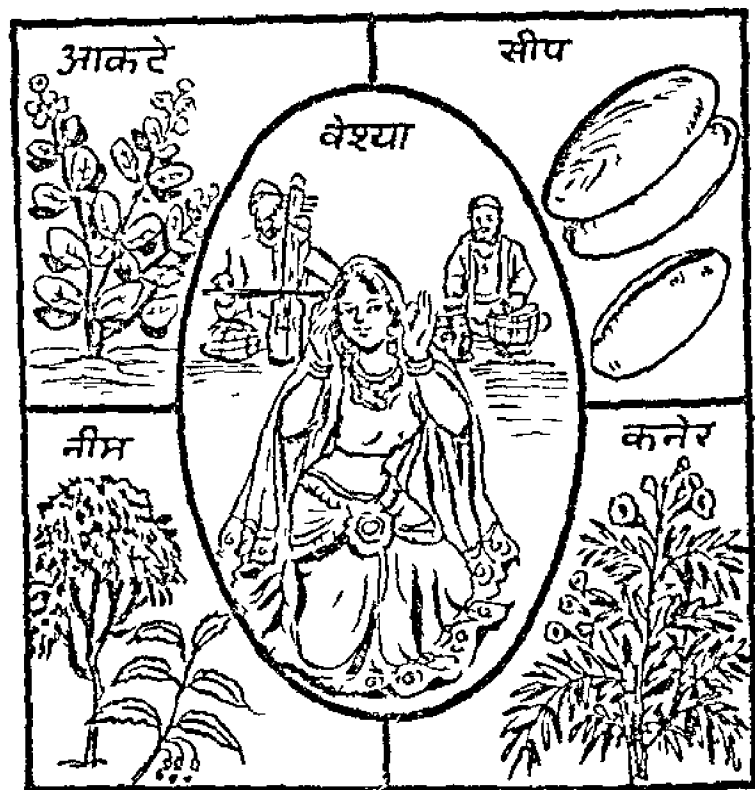
डेढ हजार अकौआ की थी, सीप योनि अस्सीय हजार।
नीम और केला तरु की थी, सहस वीस भव क्रम अनुसार॥
तीस शतक चदन तरु एव, पच कोटि भव हुये कनेर।
वेश्या साठ हजार वार बन, पाच कोटि तन धरे अहेर॥

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीवों के दुखों का वर्णन

(१)

लट-चींटीं-भँवरा विकलत्रय द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव।
चितामणि सम दुर्लभ है त्रस जिसमें रह दुख सहे अतीव॥

(२)

कुचले-पीसे गये प्रवाहित हुये अग्नि में भस्मीभूत।
खाये गये पक्षियों द्वारा सहे दुःख मारीचि प्रभूत॥

(३)

पंचेन्द्रिय जब हुआ असैनी हित अनहित का नहीं विवेक।
ज्ञान अल्प था, मोह तीव्र था धर्महीन दुख सहें अनेक॥

(४)

संज्ञी पंचेद्रिय पशु होकर लघु जीवों का किया शिकार।
स्वयं दीन कातर होने पर बना सशक्तों का आहार॥

(५)

छेदन-भेदन-क्षुधा-पिपासा की पीड़ायें क्या कहना ?।
सर्दी-गर्मी बोझा ढ़ोना-वध-बन्धन परवश सहना॥

(६)

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता।
इसीलिये दुख सहे अनेकों गर्भ-जन्म एवं शिशुता॥

(७)

पृथ्वी जल की अग्नि वायु की वनस्पती की बादर काय।
अपर्याप्त पर्याप्त रूप से धारी असंख्यात पर्याय॥

(८)

पृथ्वी कायिक में भोगी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार।
जल कायिक में भोगी थी उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार॥

विकलत्रय त्रस एव मानव पर्याय में मारीचि
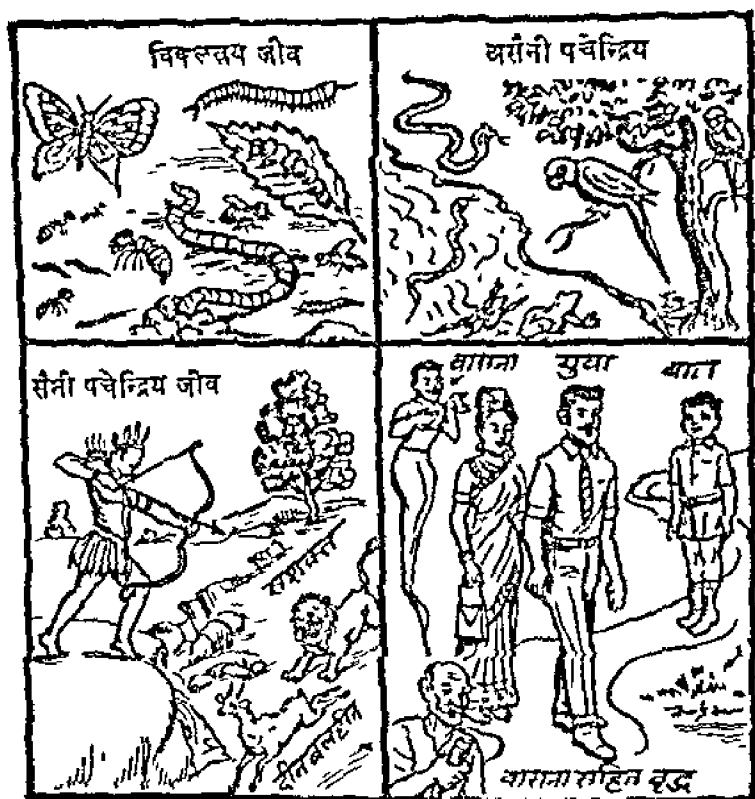
बालकपन मे खेल-कूद मे सारा समय व्यतीत हुआ ।
भोग विलासो भरी जवानी मे कुछ भी न प्रतीत हुआ ।।
बूढी सब हो गई इन्द्रियां किन्तु वासना रही जवान ।
मरघट मे पग लटक गये पर आया नही धरम का ध्यान ।।

पंचेन्द्रिय त्रियंच पर्यायों में मारीचि
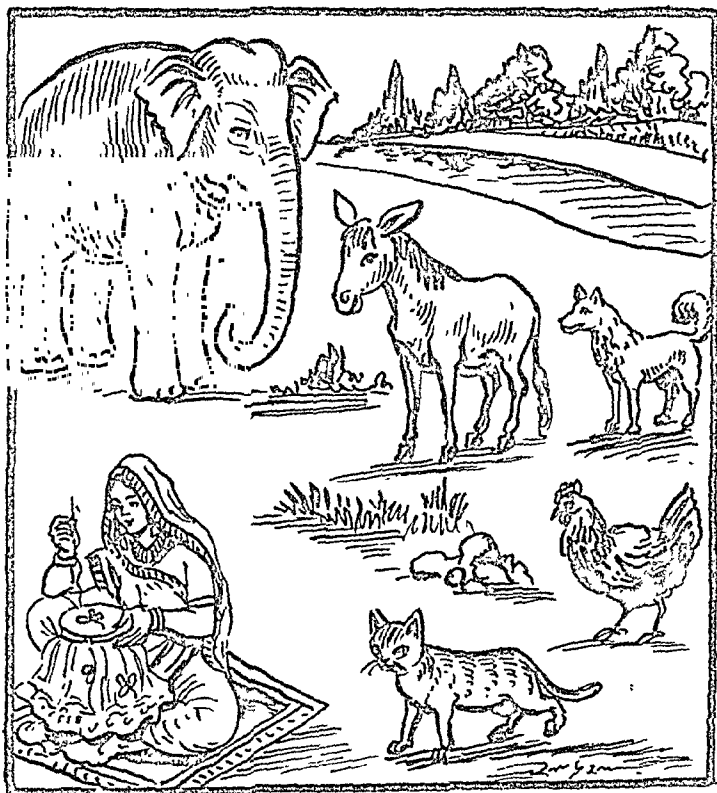
बीस कोटि अवतार गजों के गर्दभ पशु के साठ करोड़ ।
स्वांग श्वान के तीस कोटि थे साठ लाख क्लीबों के जोड़ ।।
बीस कोटि नारीपर्यायें, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष ।
मार्जार एवं तुरगी के बीस आठ कोटिक क्रम कक्ष ।।

शाडली पुत्र स्थावर द्विज के रूप मे
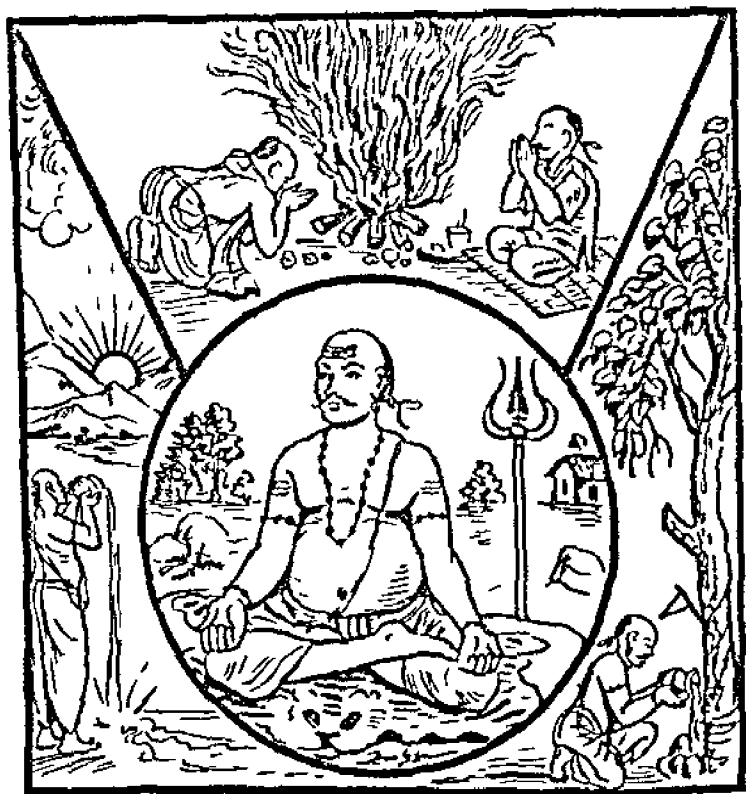
जन्म मरण के साठ लाख तक कष्ट असंख्यों काल सहे।
शुभ कर्मो से शाडली (क) के स्थावर द्विज बाल रहे॥
इह भवघाती आत्म हनन ही सब से दुखकर पाप यहा है।
जन्म जन्म घाती मिथ्यात्वी! बना पाप का बाप यहा है॥

स्थावर द्विज माहेन्द्र स्वर्ग में

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थे पाई विप्र ने सुर पर्याय ।
क्योंकि स्वर्ग सुख दे सकती है बिन समकित ही मंद कषाय ।।
लाखों शून्य इकट्ठे होकर नहीं बने है कभी इकाई ।
लाखों पुण्यों ने मिलकर क्या कभी धर्म की संज्ञा पाई ? ।।

विश्वनन्दी द्वारा वैसाखनन्द पर वृक्ष प्रहार

स्वर्ग सुखों से च्युत होकर सुर, हुआ विश्वनदी युवराज ।
उसका शत्रु चचेरा भाई, था वैशाखनद शिरताज ।।
उद्धत हो वैशाखनद ने, उपवन पर अधिकार किया ।
वृक्ष उखाड विश्वनदी ने, उस पर अत प्रहार किया ।।

विश्वनंदी द्वारा वैशाखनंद पर वृक्ष-स्तम्भ प्रहार

बच कर भागा चढ़ा खंभ पर, वह बैसाखनंद भयभीत ।
तोड़ा उसे विश्वनंदी ने, हुई साथ ही आतम प्रतीति ॥
मानव से मानव डरता है, इतना कायर है संसार ।
अगर वीर मुझ को बनना है, लूँ विरागता के हथियार ॥

विश्वनन्दी द्वारा दिगम्बरत्व ग्रहण
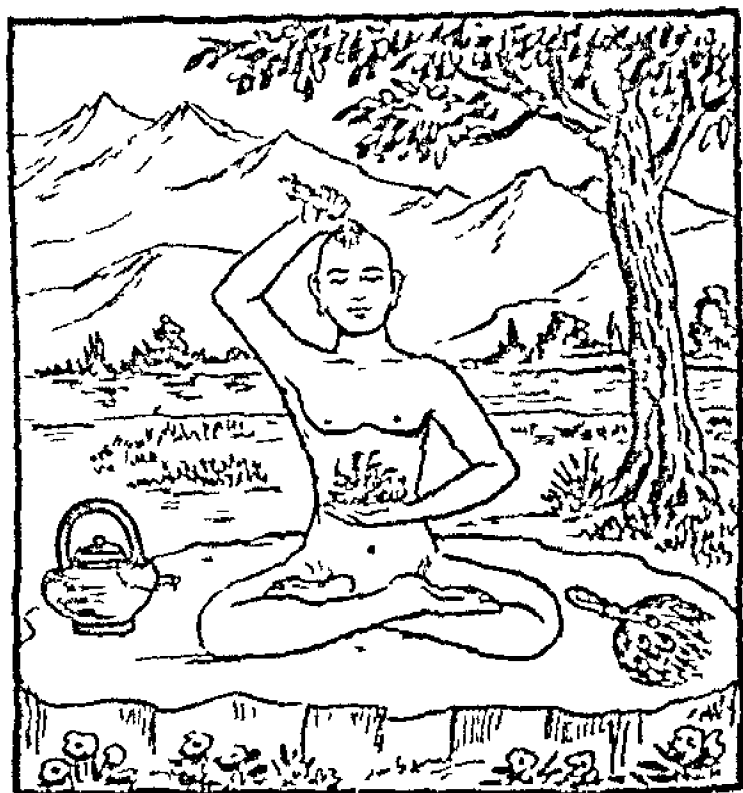
विश्वनंदि वैराग्यभूति ने नग्न दिगम्बर धारे भेष।
कठिन तपस्याओं के कारण, काया जर्जर हुई विशेष॥
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय, गुप्ति धर्म दश धारी वे।
शुभ उपयोग सहित छटवें गुण, थानक शुद्ध विहारी वे॥

मुनि विश्वनंदी का आहारार्थ गमन
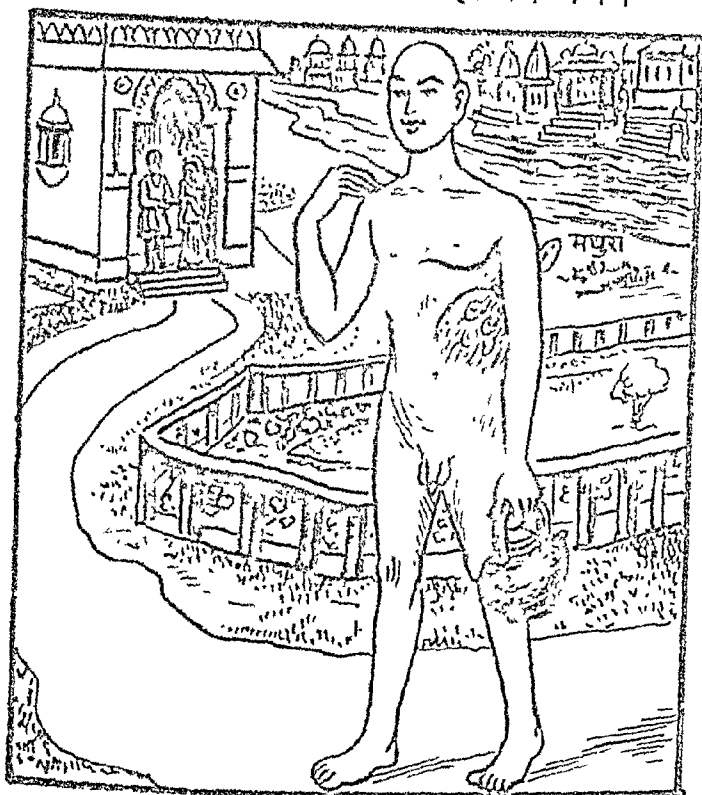
पाणिपात्र खड्गासन मुद्रा में ही नीरस अल्पाहार।
सिंहवृत्ति से निरंतराय मुनि जीवनार्थ करते स्वीकार॥
एक दिवस श्री विश्वनंदि जी आहारार्थ निकलते है।
मथुरा नगरी ओर मुनीश्वर ईर्यापथ से चलते है॥

बलिष्ठ बैल द्वारा विश्वनंदी मुनि पर आक्रमण
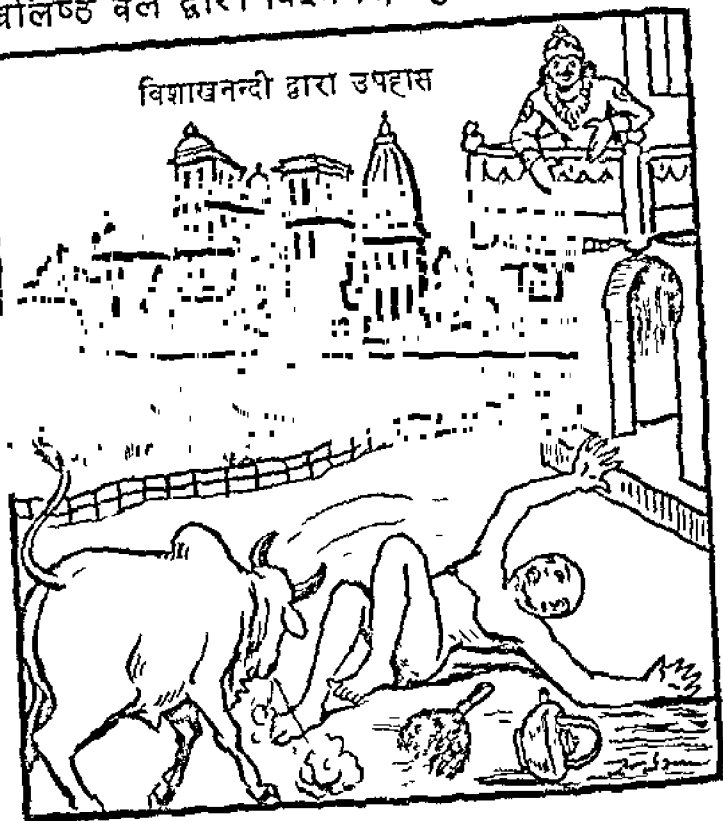
तभी भागते हुए बैल की टक्कर से वे गिर जाते।
किन्तु तनिक भी अपने मन मे नही कषायों को लाते ॥
राजमहल की छत पर से वैशाखनद ने देखा दृश्य।
अट्टहास उपहास सहित वह बोला व्यंगोक्तिया अवश्य ॥

विश्वनन्दी मुनि का महा शुक्र स्वर्ग में प्रयाण

दृष्टि: के अनुसार सृष्टि है भावों के अनुसार भवन ।
विश्वनंदि वैशाखभूति ने दशम स्वर्ग मे किया गमन ॥
मुनि निन्दक वैशाखनंद भी सप्तम नर्क पहुँचता है ।
आगे की पर्यायों में खल नायक इनका बनता है ॥

नारायण प्रति नारायण का द्वंद्व युद्ध

बेचारे उस ज्वलनजटी पर अश्वग्रीव चढ कर आया ।
मानो सन्मुख देख शेर को मृग बेचारा घबराया ॥
किन्तु न्याय के साध्य हेतु आये नारायण बलभद्र ।
की सहायता ज्वलनजटी की अश्वग्रीव से छीना चक्र ॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा अश्वग्रीव प्रति नारायण का वध

थे त्रिपृष्ठ नारायण एवं अश्वग्रीव प्रतिनारायण।
नियत व्यवस्था नही बदलती दोनों में होता है रण॥
किन्तु नियमतः मारा जाता है नारायण के द्वारा।
खल नायक प्रति नारायण था अश्वग्रीव रिपु वेचारा॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा गायक शय्यापाल पर आक्रोश

गायक शय्यापाल किन्तु था गाने मे इतना तल्लीन।
राजा के निद्रित हाने की खबर न उसको हुई स्वाधीन॥
स्वर लहरी मे निद्रा टूटी नही क्रोध का पारावार।
गायक के मुख-कण डाल दी गरम गरम शीशे की धार॥

पापोदय से त्रिपृष्ठ नारायण सातवें नर्क में उत्पन्न
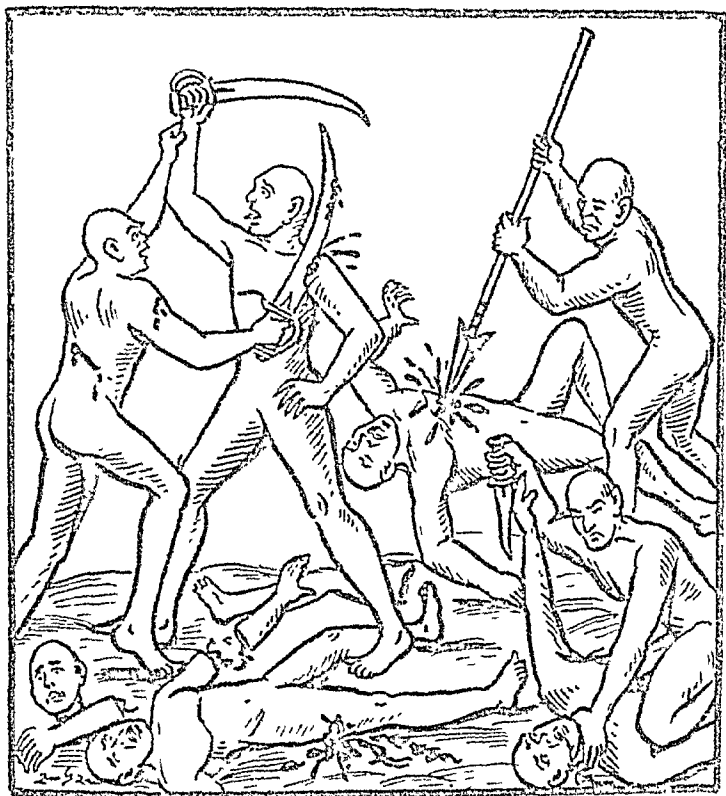
नारायण का नरकों जाना, सर्वज्ञों ने देखा है।
उसको कौन बदल सकता जो, अमिट नियति की रेखा है॥
बह्वारंभ परिग्रह से या, विषय-भोग परिणाम स्वरूप।
आर्त-रौद्रध्यानों से मर कर, गया सातवें नर्क कु—भूप॥

त्रिपृष्ठ नारायण नर्क से निकल कर सिंह पर्याय में

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुःख सहे उसने घनघोर।
निकल वहाँ से हुआ शेर वह, हिंसक पशु गणों की ओर।।
किंतु अभी भी उस तिर्यंच का सूझा नहीं कोई सदुपाय।
अथवा ऐसा कहो कि युगपत्, मिले नहीं पाँचों समवाय।।

क्रूर हिंसक सिंह प्रथम नर्क में

फलस्वरूप वह प्रथम नरक में पहुँचा पुनः आयु कर पूर्ण ।
अहँकार मिथ्यात्व आदि सब विधि के द्वारा होते चूर्ण ।।
नारकीय जीवन की झाँकी दिखलाना अत्यन्त कठिन ।
वहाँ रौद्र वीभत्स भयंकर मृत्यु वेदना भय छिन छिन ।।

चारण ऋद्धिधारी मुनियों द्वारा सिंह को उद्बोधन
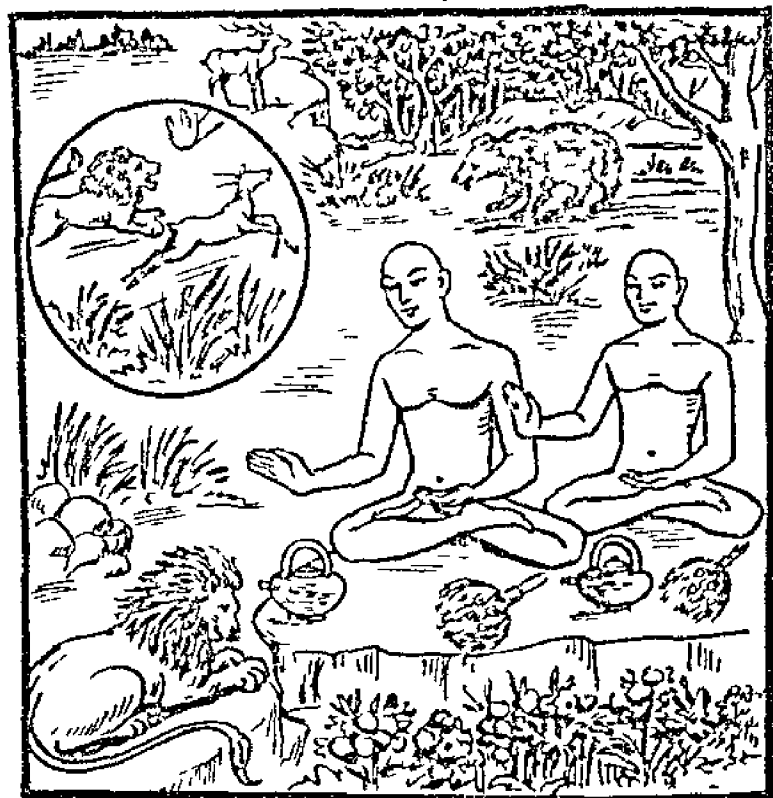
एक दिवस वह क्रूर सिंह मृग पर चटने ही वाला था।
दो चारण ऋद्धिधारियों ने त्यों ही जादू कर डाला था॥
जय अजितञ्जय जय अमिततेज मुनि करुणा के अवतार महा।
सिंह से बोले—ठहरो! ठहरो!! तुमको वध का अधिकार कहाँ ?॥

सिंह-संबोधन

(१)

पर्याय मूढ़ता के द्वारा तुम तो अनादि से भटक रहे।
तुम आत्म-विपर्यय होकर ही चहुँ गति में औंधे लटक रहे॥

(२)

अब अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर' यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो॥

(३)

मिथ्यात्व सरीखा पाप नहीं सम्यक्त्व सरीखा धर्म नहीं।
शोभा तुम को दे सकता है इस हिंसा का अब कर्म नहीं॥

(४)

श्री ऋषभदेव के युग से ले भव भव मिथ्यात्व रचा तुमने।
पाखण्डवाद को फैलाकर बस आत्म वंचना की तुमने॥

(५)

पिछली पर्यायें मत देखो मत देखो अगली परयायें।
उनका इतिहास देखने से पैदा होती आकुलतायें॥

(६)

यद्यपि सिंह की पर्याय तुम्हें जो वर्तमान में प्राप्त हुई।
वह तीव्र कपायी भावों की रचना तन मन में व्याप्त हुई॥

(७)

अब वर्तमान में सावधान होकर स्वरूप को पहिचानो।
तिर्यञ्च क्रूर तुम सिंह नहीं यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो॥

(८)

संशय विभ्रम को छोड़ बनो हे चेतन तन से निर्मोही।
निःशंकित होकर पालो तुम सर्वज्ञ निरुपित दोनों ही॥

(९)

निश्चय व्यवहार समन्वित हो निज गृहण पूर्वक त्याग कहा।
अपने से वाहिर जाना ही शुभ-अशुभ रूप मय राग कहा॥

(१०)

यह भेद ज्ञान की कला तुम्हें सम्यक् पथ पर लाने वाली।
इसका अभ्यास करो प्रतिक्षण जो कर्मों को ढाने वाली॥

(११)

तुम मांसाहार तजो पहिले फिर अणुव्रत पालन कर लेना।
लेकर समाधि फिर अन्त समय जिन भक्ति हृदय में धर लेना॥

(१२)

संसार शरीरो भोगो में नश्वरता है अशरणता है।
एकत्व त्रिकाली शुद्ध ध्रौव्य अपवित्रा अन्य वरणता है॥

(१३)

पाप पुण्य के आस्रव हो चेतन का बंधन करते हैं।
इसलिये हेय इनको मानो कर्मों का मर्जन करते हैं॥

(१४)

है धर्म सुसंवर स्वय पुरुषार्थं निर्जरा का करना।
फिर लोक भ्रमण का कर विचार निज बोधि भाव मन में धरना॥

(१५)

दश धर्म रूप रत्नत्रय ही यह जैन धर्म कहलाता है।
जो परम अहिंसा धर्म नाम से जग में जाना जाता है॥

(१६)

मुनि वचनो पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो युग-युग का मिथ्यात्व भगा॥

(१७)

अब उदासीन श्रावक सा रह वह अपना समय विताता था।
अपने भव-भव के कृत कर्मों पर, वार बार पछताता था॥

विवेकी सम्यक्त्वी सिंह पश्चाताप मौन मुद्रा में
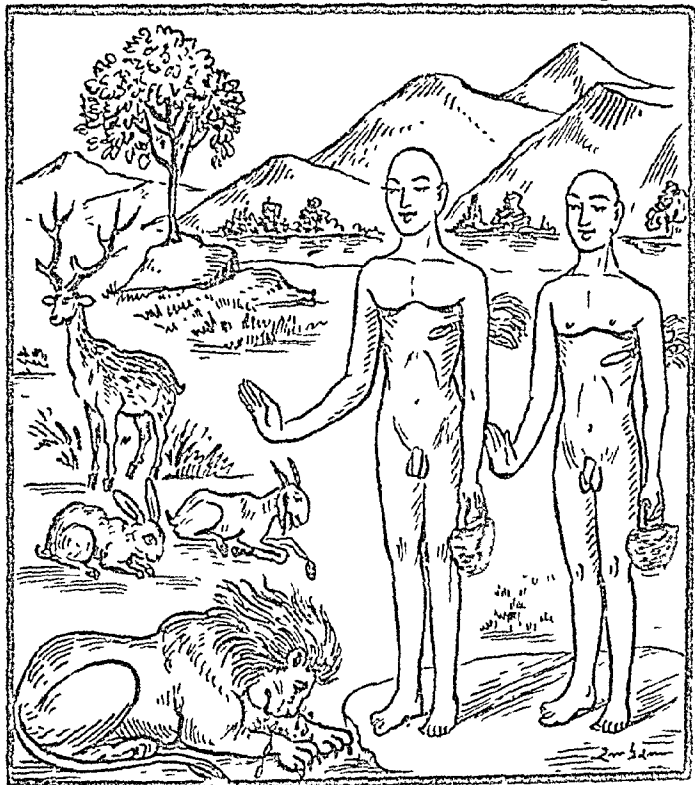
अब सम्यक् दर्शन धारण कर श्रावक के व्रत स्वीकार करो ।
हे मृगपति! पशु निर्दोषों का, मत आगे अब संहार करो ॥
मुनिश्री का उपदेशामृत सुन आँखों से आँसू टपक पड़े ।
प्रायश्चित पापों का करके, मृगपति चरणों में लुढ़क पड़े ॥

सौधर्म स्वर्ग का देव "सिंह केतु"
(सिंह का जीव)

सम्यक्त्व सहित जब मरण किया सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ ।
थी सिंहकेतु संज्ञा उसकी अर्हन्त भक्त स्वयमेव हुआ ॥
अभिषेक जिनेश्वर का करना वह सम्यक् दृष्टी भव्य महा ।
शुभ साधन धर्माराधन ही था उसका निज कर्तव्य वहाँ ॥

सिंहकेतु देव द्वारा पचंमेरु की वन्दना
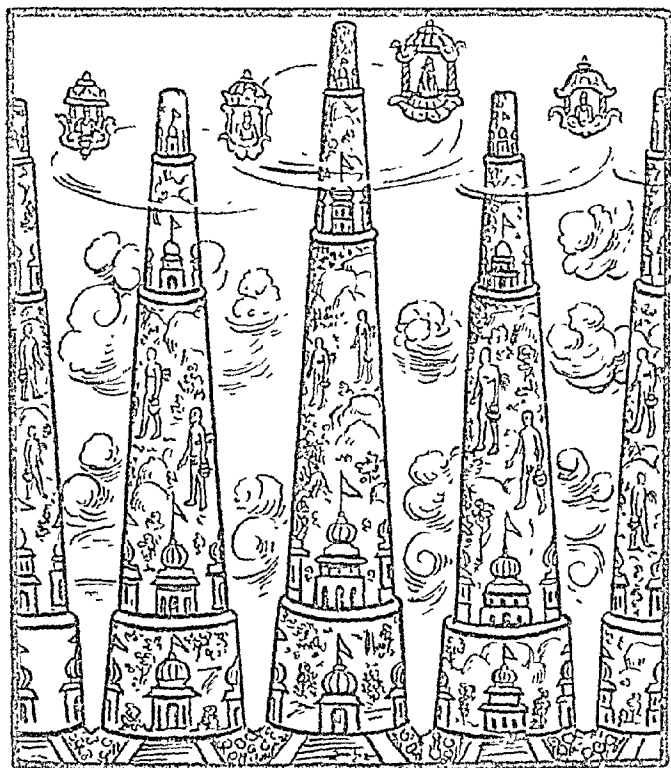
वह पंचमेरु के चैत्यों की वन्दन करता था यदा-कदा।
शुभ राग और सुख वैभव में ही रहता था तल्लीन सदा ॥
निश्चय ही धर्म जहाँ रहता शुभ भाव पुण्य सहचारी है।
सहचारीपन के ही कारण शुभ पुण्य धर्म अधिकारी है ॥

सिंहकेतु देव का जीव कनकोज्ज्वल विद्याधर

सौधर्म स्वर्ग से चय कर फिर कनकोज्वल राजकुमार हुआ।
देश कनकप्रभ नृपति पद्म विद्याधर घर अवतार हुआ॥
जल में भिन्न कमल वत् रहकर विद्याधर ने भोगे भोग।
एक दिवस गुरु के वचनों का प्राप्त हुआ था शुभ संयोग॥

कनकोज्वल युवराज वैराग्य की ओर
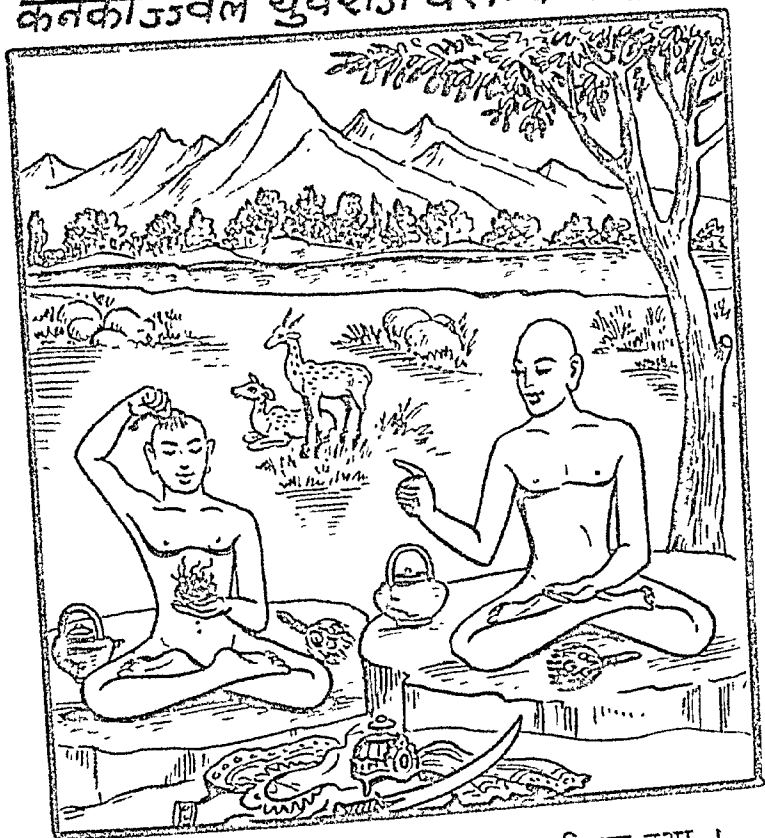
संसार देह एवं भोगों से वह युवराज विरक्त हुआ ।
महाव्रती निर्ग्रन्थ दिगम्बर रत्नत्रय का भक्त हुआ ॥
कनकोज्वल मुनिवर भावलिंग शुद्धोपयोग में रहते थे ।
अस्थिरता होने पर किंचित शुभ उपयोगों में वहते थे ॥

लान्तव स्वर्ग की विभूति से विभूषित
कनकोज्ज्वल का जीव

सम्यक्त्व सहित जब मरण किया तब उसको सप्तम स्वर्ग मिला ।
मानो विराग के सागर में सुख ऐश्वर्या का कमल खिला ।।
वह अविरत सम्यग्दृष्टी था पर संयम की थी छटपटी ।
इसलिये न क्षण भर भी उसकी ज्ञायक स्वभाव से दृष्टि हटी ।।

राजा हरिषेण द्वारा दिगम्बरत्व ग्रहण
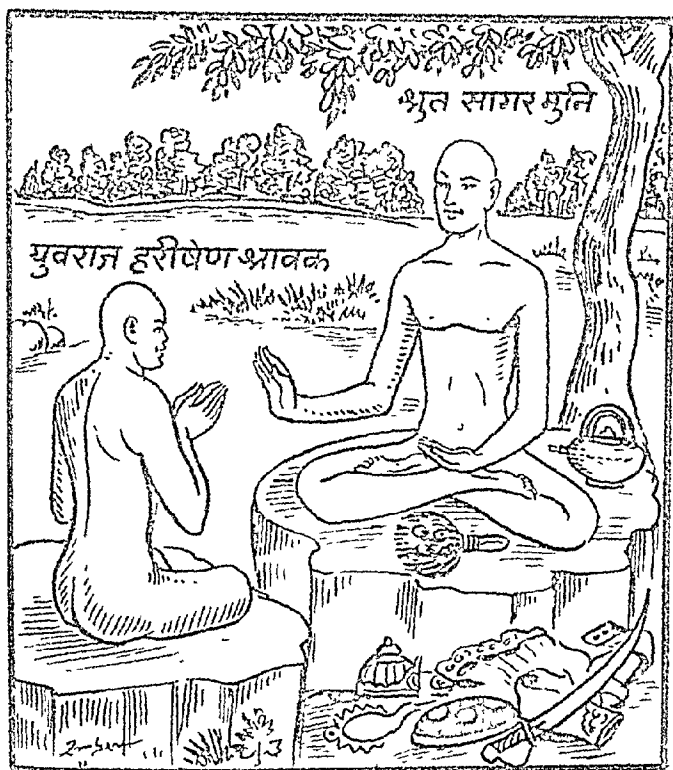
आयु पूर्ण कर वह सम्यक्त्वी अवधपुरी युवराज हुआ।
वज्रसेन सुत हरीषेण नामक श्रावक सिरताज हुआ॥
श्रुतसागर मुनि से दीक्षित हो यथाकाल निर्ग्रन्थ हुआ।
रत्नत्रय तप से प्रशस्त उनके द्वारा शिव-पंथ हुआ॥

हरिषेण मुनि श्री का जीव महा शुक्र स्वर्ग में

धर्म ओर पुण्यो के फल मे प्राप्त हुआ तब स्वर्ग दशम ।
अन्तर्मुहूर्त मे हुए युवा तन धातु रहित था दिव्योत्तम ।।
निज अवधिज्ञान से जान लिया यह वैभव धर्मों का फल है ।
चचल भोगो मे इसीलिये वह रहा वहां भी अविचल है ।।

हरिषेण का जीव चक्रवर्ती प्रियमित्र कुमार

पुंडरीकणी है विदेह में उसमें ही प्रियमित्र कुमार ।
सहस छियाणव राजरानियों के थे चक्रवर्ति भरतार ॥
कोटि अठारह अश्व और गज थे जिनके चौरासी लाख ।
मुकुट बद्ध राजा सेवक थे सहस तीस द्वय आगम साख ॥

निर्ग्रंथ तपस्वी प्रियमित्र कुमार
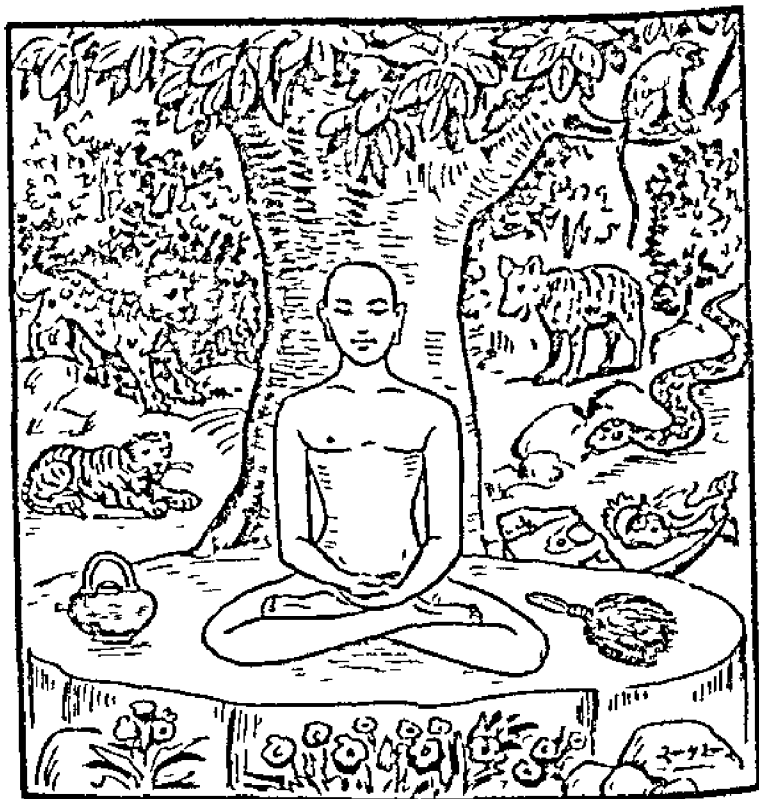
सुन कर जिनवर वाणी को वे उद्‌बोधन को प्राप्त हुए।
निर्ग्रन्थ तपस्वी बन कर निज अन्तश्चेतन मे व्याप्त हुए॥
रत्नत्रय चारों आराधन पांचो व्रत समिति पालते थे।
त्रय गुप्ति सहित वे भाव द्रव्य आश्रव ही सतत टालते थे॥

निर्ग्रंथ मुनि प्रिय मित्र कुमार का जीव

फिर आयु पूर्ण कर मुनिवर ने द्वादश स्वर्ग में गमन किया ।
भोगों से रह कर अनासक्त सुर ने निज का अध्ययन किया ॥
थी सूर्य प्रभा सम दिव्य देह शुभ आयु अठारह सागर की ।
निज ज्ञान चेतनामय परणति की महिमा वहाँ उजागर की ॥

युवराज नंद (सहस्रार स्वर्ग के देव) द्वारा दीक्षा ग्रहण

आयु पूर्ण कर चय कर आये छत्राकार नगर में।
नन्दिवर्द्धनम वीरवती दम्पति के पावन घर में॥
नंद नाम युवराज हुआ वह शुभ सम्यक्त्वी श्रावक।
प्रोष्ठिल मुनि से दीक्षा धारी तज विषयों की पावक॥

अर्हंत् केवली पाद-मूल मे भाई सोलह कारण।
भावनाएं जो पुन्य प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ है वन्धन ॥
तीर्थंकर पद की महिमा को गा न सके जव गणधर।
सुरपति सरस्वती फणपति भी पूजे जिनको हरिहर ॥

नद मुनि का जीव तत्व चर्चा मे तल्लीन

नद मुनीश्वर ने तप करके अपनी काया त्यागी।
अच्युत नामक स्वर्ग लोक मे इन्द्र हुए बडभागी॥
नित्य तत्त्व चर्चा मे रहकर काल असंख्य बिताया।
भोगो मे भी अनासक्त रह शुभ उपयोग लगाया॥

महावीर गर्भावतरण

अच्युत स्वर्ग से उतर इन्द्र प्रियकारिणि की कुक्षि पधारे।
आसाढ़ीपष्ठी शुक्ला को हुए पूर्ण गर्भोत्सव सारे॥
पन्द्रह महिने तक देवों ने पृथ्वी पर बरसाये हीरे।
माता ने देखे शुभ सोलह सपने सार्थक धीरे धीरे॥

वीर शिशु को लेकर शची का सौर भवन से निर्गमन

गुप्त रूप में इन्द्राणी ने सौर-भवन में किया प्रवेश।
जननी को सुख निद्रा देकर शीघ्र उठाया बाल-दिनेश॥
उनके बदले मायामय सद्य प्रसूत शिशु सुला दिया।
फिर बाहर आकर सुरपति की हर्षित बाहों में झुला दिया॥

वीर प्रभु के जन्माभिषेक की शोभा-यात्रा

स्वर्गो से उतर जुलूस रहा नभ-पथ से शुभ वैशाली पर ।
सुर इन्द्रों की शोभा-यात्रा जन्मोत्सव की खुशहाली पर ॥
यह दिग्गज ऐरावत देखो जिसके दन्तों पर है सरवर ।
सर में सरोज है खिले हुए नचतीं हे सुर-परियां जिन पर ॥

नवजात महावीर श्री के जन्माभिषेक की मंगल वेला

जो क्षीर सिन्धु के नीर-कलश स्वर्णिम सुरगण भर-भर लाते ।
इन्द्रा द्वारा धारावाही वे शिशु शिर पर ढारे जाते ।।
अभिषेक जिनेश्वर का होता दश शतक अष्ट कलशो द्वारा ।
संगीत नृत्य कौतूहल मय है दृश्य अलौकिक ही सारा ।।

अपूर्व अध्यात्म प्रभावः सन्मति नामकरण
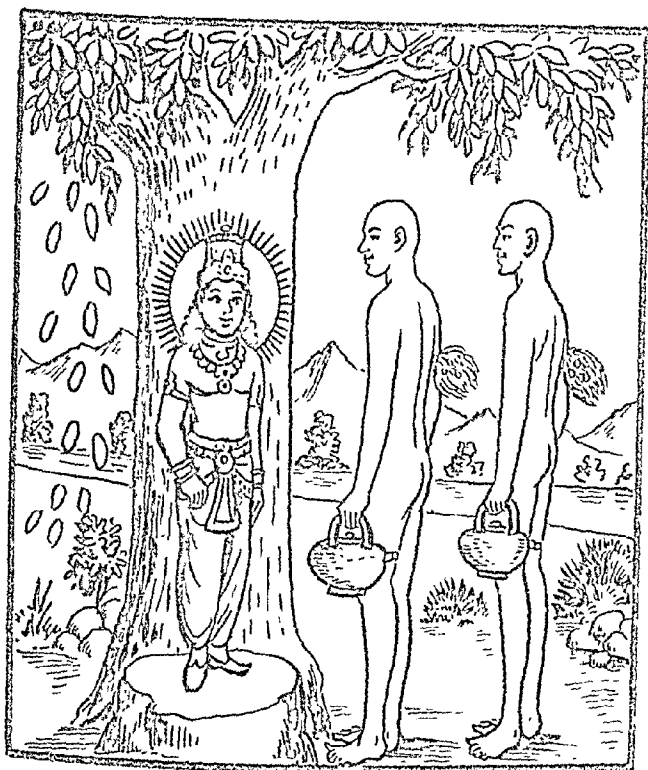
शैशव-सुलभ वाल लीलाएँ लोकोत्तर थीं वर्द्धमान की।
संजय विजय मुनीश्वर चारण की शंकायें समाधान कीं ॥
ज्यों ही वालवीर को देखा उन्हें तत्व का बोध हो गया।
वर्द्धमान का नाम करण तव सन्मति से संवोध होगया ॥

आमली (अन्डाडावरी) क्रीडा मे रत राजकुमार वीर श्री की

सगम नामक एक देव तब शक्ति परीक्षा लेने आया।
महा भयकर नाग रूप धर उसी वृक्ष पर जा लिपटाया ॥
जिस पर खेल रहे थे सन्मति साथी सयुत अटन्डावरी।
उनके फण पर निडर पैर रख देव विक्रिया हुई बावरी ॥

थैयां छूने की क्रीड़ा में रत मायावी संगमदेव और वर्द्धमान कुमार

अतः पराजित होकर संगम बन कर सखा खेलने आया।
थैयां छूने की क्रीड़ा में वर्द्धमान ने उसे हराया।
इतने पर भी सुर-सगम ने उनकी शक्ति नहीं पहिचानी।
अतः पुनः उस मायावी ने उन्हें गिराने की विधि ठानी॥

महावीर श्री के मुष्टि प्रहार से मायावी देव परास्त
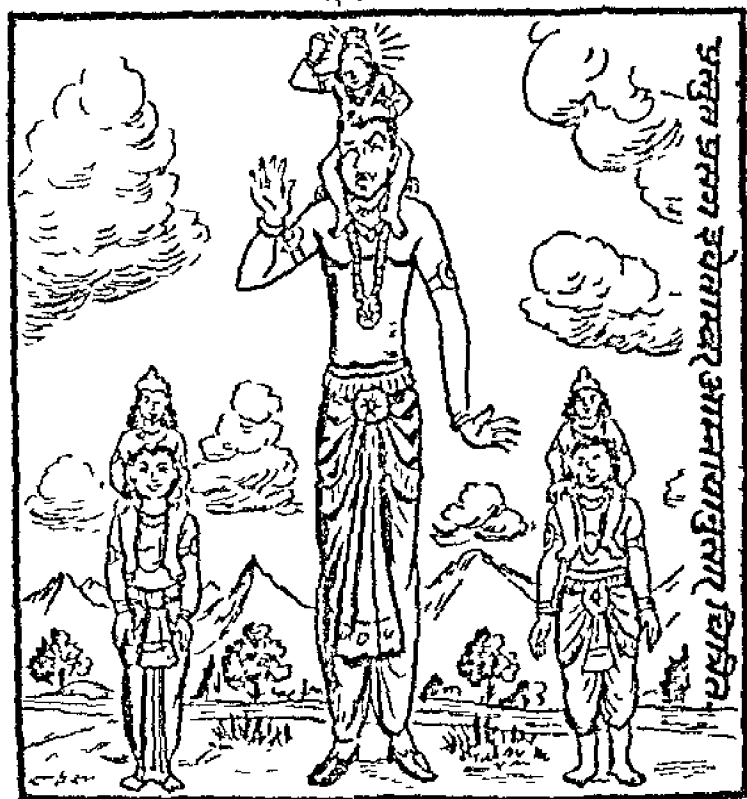
श्री क्रीडा की शर्त विजेता को परास्त लादे कंधों पर ।
तदनुसार चढ़ बैठे बालक वीर उसी सगम के ऊपर ॥
किन्तु विक्रिया करके सुर ने अपना लंबा रूप बनाया ।
सिर पर घूंसा मार वीर ने उसे यथावत् पुन बनाया ॥

आक्रामक निरंकुश हस्तीकोवश करने वाले "अतिवीर"
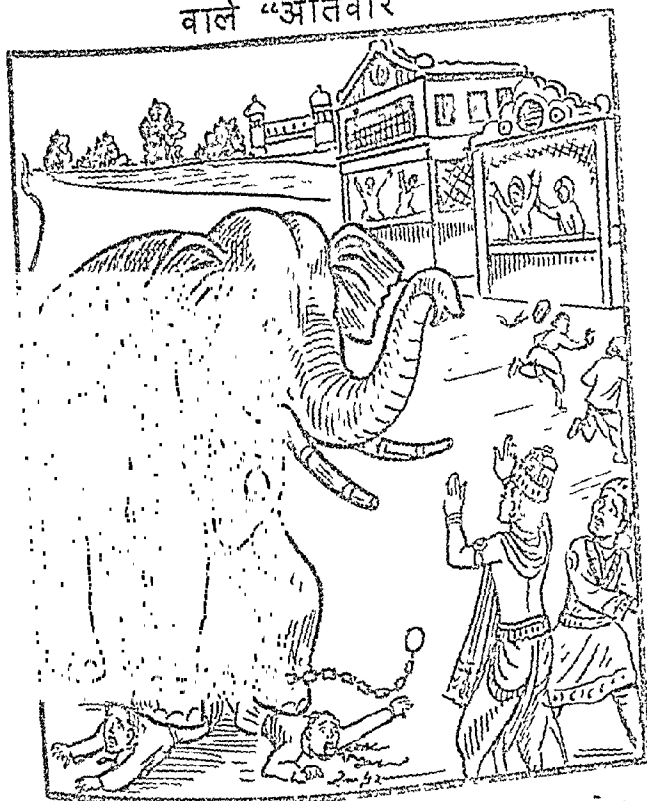
अत: तभी से वर्द्धमान शिशु सन्मति महावीर कहलाये।
वश में किया मत्त हाथी जब तब से प्रभु अतिवीर कहाये॥
वीरोचित थे कार्य बाल के जिनमें पौरुष झलक रहा था।
जड़ काया को भेद-भेद कर चेतन का रस छलक रहा था॥

धर्म के ठेकेदारो द्वारा रोका गया हरिकेशी चाण्डाल

जब तरुण वीर वैरागी ने वन के प्रति कदम बढ़ाया था ।
तब जन समूह दर्शक गण का मानो सागर लहराया था ॥
इस जन समूह को चीर उठा वह हरिकेशी चांडाल वहाँ ।
पर मना किया रोका उसको था उच्च वर्ग का जाल वहाँ ॥

पतितोद्धारक युवराज वर्द्धमान

पर स्वयं वीर ने उसे देख अपने ही निकट बुलाया था।
अपनी स्नेहिल बाहों मे भर उसको गले लगाया था॥
इस युग के सम्प्रति शासन मे उस युग की ही प्रतिछाया है।
वैदिक युग के अन्त्यज को सन्मति युग ने उच्च उठाया है॥

स्याद्वाद सिद्धान्त की पृष्ठ भूमि पर
प्रतिष्ठित वैशाली का सत खंड भवन
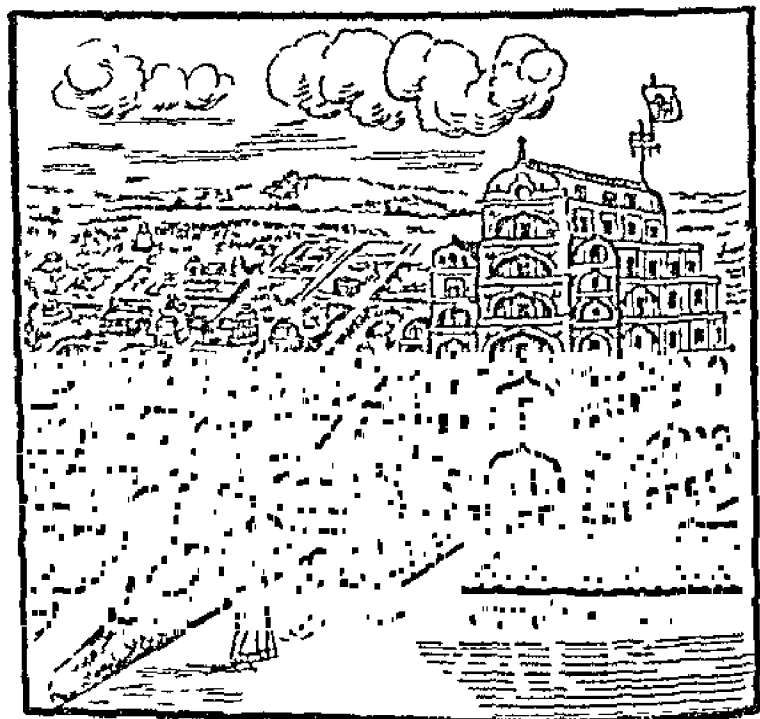
प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित

अनेकान्त-रहस्य

निज सत खंडे राज-भवन की; चौथी मंजिल के सुकक्ष में।
बैठे सोच रहे थे सन्मति, अपेक्षाओं के न्याय पक्ष में॥

उसी भवन की पहली मंजिल में स्थित थीं त्रिशला देवी।
किन्तु सातवीं पर पितु श्री थे, देव शास्त्र गुरु के पद सेवी॥

समवयस्क ने आकर तब ही पूँछा पूजनीय माता जी।
वर्द्धमान हैं कहाँ अवस्थित ? ऊपर बोली श्री त्रिशला जी॥

बालक सत्वर चढ़ा भवन की उसी सातवीं मंजिल ऊपर।
पूछा नृप से हे जनकश्री ! वर्द्धमान जी गये कहाँ पर ?॥

नीचे, उत्तर दिया उन्होंने बालक असमंजस में डोला।
ऊपर नीचे की अपेक्षा समझ न पाया बालक भोला॥

ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आते-जाते समवयस्क ने।
खोज न पाया वर्द्धमान को उस निराश ने अनमनस्क ने॥

किन्तु दूसरे दिन मिलने पर उसको सन्मति ने समझाया।
ऊपर नीचे के आशय को भली भाँति मन में बैठाया॥

माता जी की तो अपेक्षा मैं सचमुच ऊपर बैठा था।
किन्तु तातश्री की अपेक्षा तो मैं नीचे ही ठहरा था॥

दोनों की वाणी सम्यक् थी किन्तु न थी निरपेक्ष सर्वथा।
अतः भ्रमित तुम हुये क्योंकि मैं चौथी ही मंजिल में था॥

इस घटना ने आगे जाकर खोज निकाला स्याद्वाद को।
अनेकान्त सापेक्षवाद ने दूर भगाया विसंवाद को॥

याज्ञिक क्रियाकांडो के विरुद्ध वीर का सिंहनाद

धर्म नाम पर जीवित नर पशु वैदिक युग मे होमे जाते।
स्वार्थ लोभ वश पडो द्वारा टिकटस्वर्ग के बाटे जाते ॥
हिंसा का यह नँगा तांडव धर्म नाम पर आत्म भ्रांति को।
देखा तरुण किशोर वीर ने अत जगाया लोक क्रांति को ॥

साम्यवाद-समाजवाद सर्वोदय के ज्वलन्त प्रतीक

वर्द्धमान युवराज क्रांतियों के प्रशान्तिमय अग्रदूत थे।
सामाजिक एवं धार्मिक सब सत्य तथ्य उनसे प्रसूत थे॥
पतितों को जो पावन करदे वही धर्म सचमुच पावन है।
दीन-वन्धु का यह दरवाजा सर्वोदय का ही कारण है॥

वैवाहिक प्रस्तावों को सविनय ठुकराते हुए वर्द्धमान

जितशत्रु कलिंगाधीश आदि निज सुता साथ में लाते थे।
पर वर्द्धमान सारे परिणय-प्रस्तावों को ठुकराते थे॥
चौबीस वर्ष के तरुण वीर थे मोहित मुक्ति मोहिनी पर।
इसलिये मानते भी कैसे? पितु-माता के समझाने पर॥
(१२०)

विरागी तरुण वीर का महाभिनिष्क्रमण
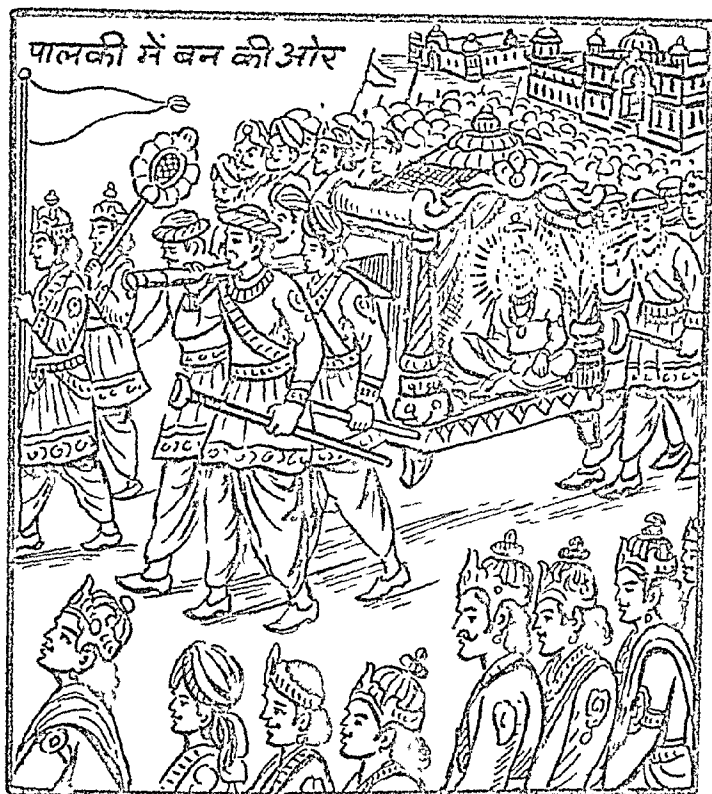
मगसिर कृष्णा दशमी के दिन राजपाट वैभव ठुकराकर ।
वीर विरागी ने तन मन से दिगम्बरत्व का दीप जला कर ॥
ज्ञातृखंड नामक अरण्य की ओर चली चन्द्रप्रभा पालकी ।
मानव सुरगण द्वारा वाहित भावलिंग मुनि वीर बालकी ॥

दीक्षा कल्याणक पर लौकान्तिक देवो द्वारा अनुमोदना

ॐनमः सिद्धेभ्य पूर्वक केशो का लुचन कर डाला।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक पर लाये अनुमोदन माला॥
अध्रुव अशरण और अपावन देह भोग नश्वरता जग की।
पर से भिन्न एक चेतन मे सवर निर्जरता शिव-मग की॥

चंड कौशिक सर्प कृत उपसर्गों पर वीर-विजय
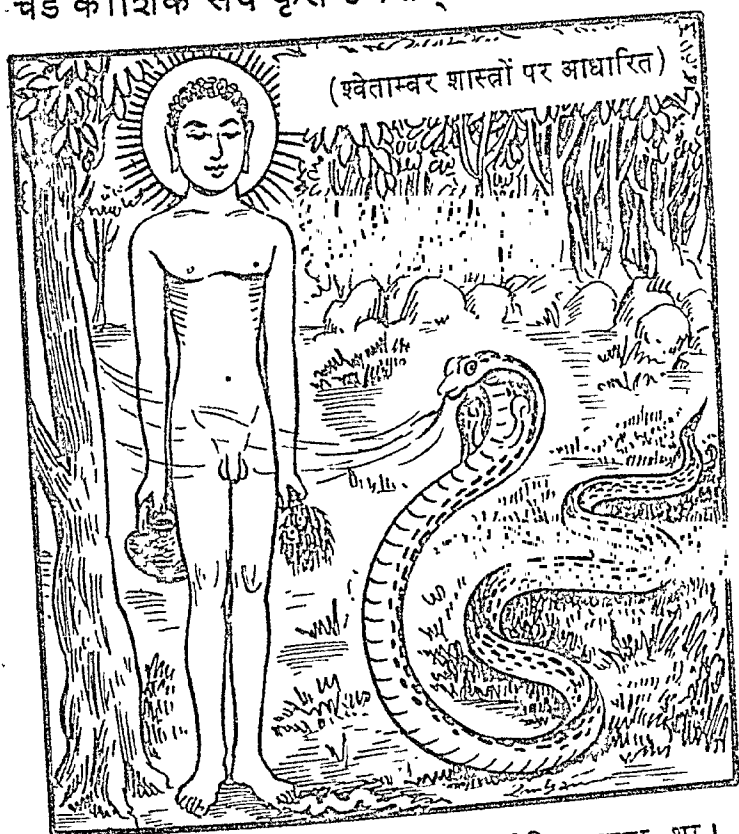
चले उसी वन वीर जहाँ वह सर्प चंडकौशिक रहता था।
जहरीली फुकारों से जो दावानल बन कर दहता था॥
क्रोधित होकर ज्यों ही उसने डसा वीर प्रभू के मृदु पग में।
लगी निकलने धार दूधिया त्यों ही अंगूठे की रग में॥

गो-पालक का आक्रोश-वीर प्रभु-की सहिष्णुता
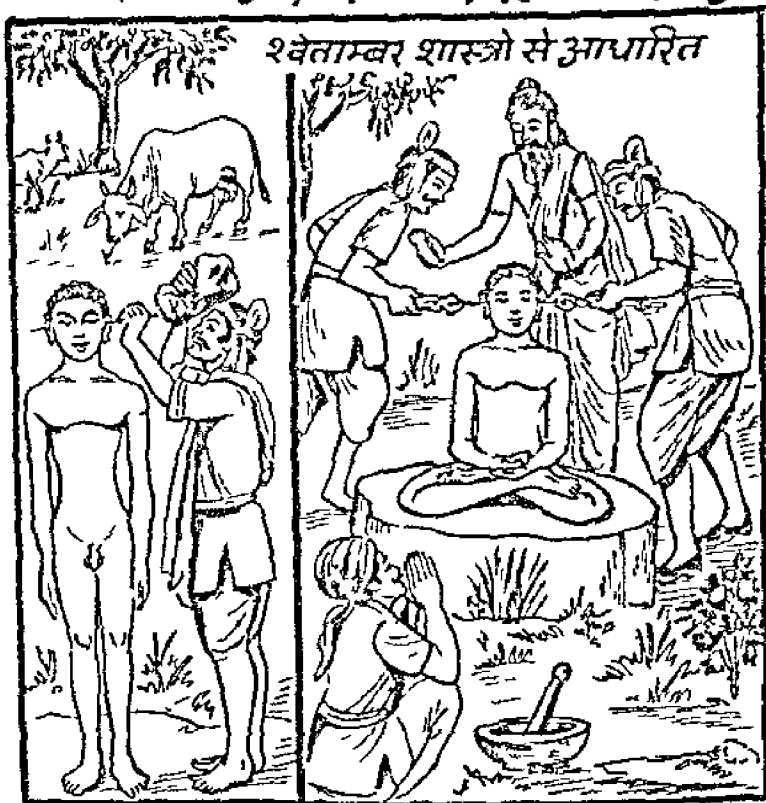
सौंप गया वह पशु-गण अपने महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापिस ले लूंगा मैं उसने ऐसा ही चाहा था ।।
किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को इन बातो से था क्या मतलब ।
अत दुष्ट ने कर्ण युगल मे कीला ठोंक दिया ही था तब ।।

रुद्र कृत उपसर्गों के विजेता महावीर
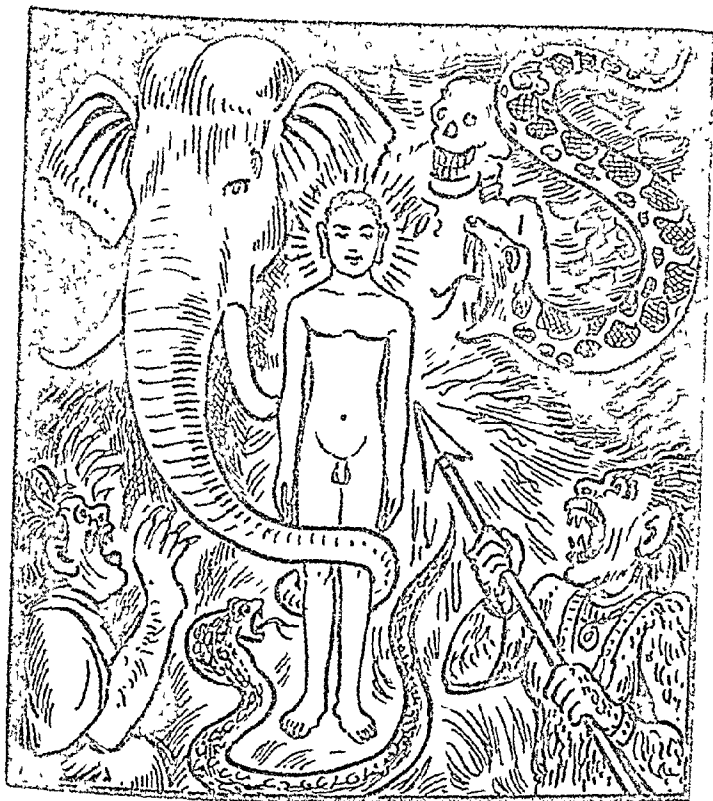
ग्यारहवाँ भव रुद्र वीर के तप की कठिन परीक्षा लेने।
उज्जयिनी के श्मसान में जोर-जोर से लगा गरजने।।
किन्तु विदेहीनाथ वीर को क्षपकश्रेणि मय शुक्ल ध्यान था।
उनकी ज्ञान चेतना को पर नश्वर तन का कहाँ भान था?।।

हिंसक वन्य पशुओ के वेश मे रुद्रकृत उपसर्ग

धीर वीर गंभीर सौम्य थी शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा।
आत्म शक्ति से हार गई थी क्षुद्र-रुद्र की माया रुद्रा॥
रुद्र रौद्र परिणामो द्वारा नरक आयु का पात्र होगया।
सु-विख्यात अतिवीर नाथ का तप कर स्वर्णिम गात्र होगया॥

काम विजेता वीतराग वर्द्धमान द्वारा पराजित अप्सराएँ
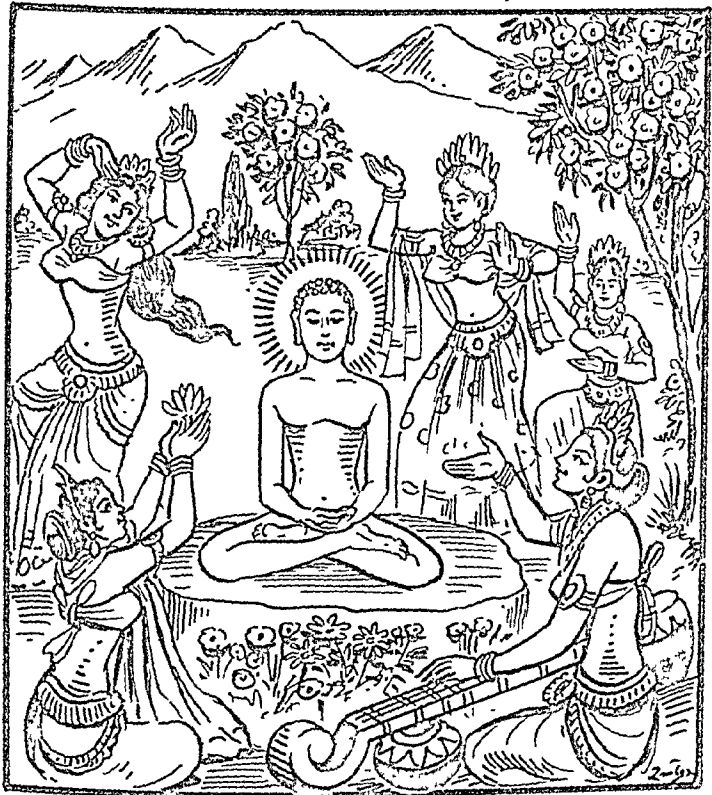
लोक विजेता महामल्ल सब काम-सुभट योद्धा से हारे।
रंभा और तिलोत्तमाओं पर हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे॥
तप से विचलित करने प्रभु को अप्सराओं ने हाव-भाव से।
खूब रिझाया महावीर को हार गई पर ब्रह्मभाव से॥

सती चन्दना द्वारा वीर श्रमण को निरन्तराय आहार
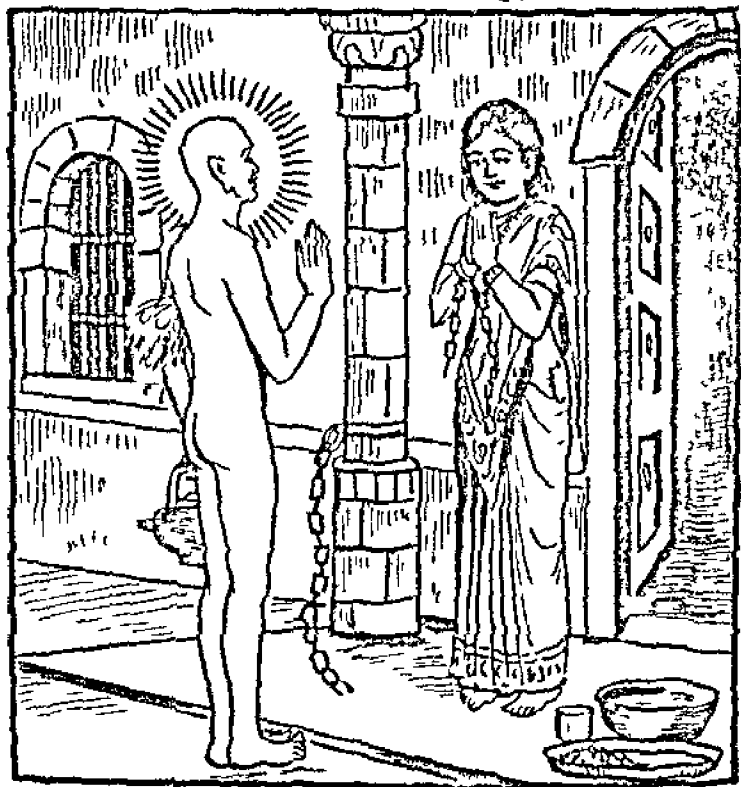
उम अभागिनी दासी ने जब महाश्रमण को पड़गाहा था।
पराधीनता ने स्वतत्रता की देवी को अवगाहा था॥
कोदों के दाने खीर बने फिर निरन्तराय आहार हुआ।
पचाश्चर्य चदना का यों मचमुच पतितोद्धार हुआ॥

वैभव की खोज में पुष्पक ज्योतिषी

वीर श्रमण ने आहारों के बाद किया वन प्रति प्रस्थान।
आर्द्र भूमि में चरण तलों के उनके बनते गये निशान ॥
पुष्पक नामक एक ज्योतिषी उसी पंथ पर आता है।
पद-चिन्हों को देख शास्त्र से रेखा ज्ञान मिलाता है ॥

ज्योतिषी का अन्तर्द्वन्द्व

(प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार वर्णित)

(१)

तेजस्वी सम्राट् प्रतापी के ही चरण-चिन्ह है ये।
क्योंकि शास्त्र अनुसार ज्ञान से दिखते नहीं भिन्न है ये॥

(२)

शायद पथ को भूल भटकता होगा वह इस जंगल मे।
अगर राह बतलादू मुझ को नव निधि मिले इसी पल मे॥

(३)

इसी लाभवश पथ चिह्नो को देख-देख बढता जाता।
एक जगह वह तरु से आगे कोई चिह्न नही पाता॥

(४)

अत वही पर रुक जाता है जहाँ वीर ध्यानस्थ खडे।
आशा के विपरीत अकिंचन वस्त्र विहीन दिखाई पडे॥

(५)

मेरा ज्योतिष ज्ञान गलत है अथवा झूठी पुस्तक है।
अत क्रोध से लगा फाडने वह सामुद्रिक पुस्तक है॥

(६)

किन्तु श्रमण के मुख-मडल से फूट रही थी जो किरणे।
उनकी आभा से चट्टानें सोना-चादी लगी उगलने॥

महत्वाकाँक्षी पुष्पक ज्योतिषी का आत्म समर्पण
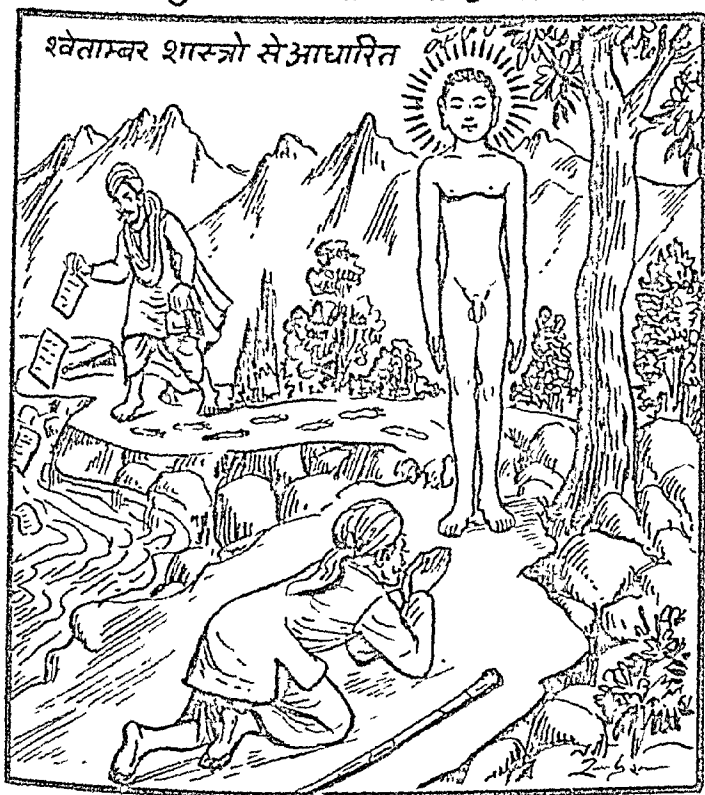
जिन्हें अकिंचन समझा मैंने वे तो सचमुच बहुत बड़े हैं।
सम्राटों के वैभव सारे पद-रज में ही भरे पड़े है ॥
अतः शीघ्र ही सामुद्रिक वह दंभ छोड़ चरणों में आया।
वीर चरण चिह्नों पर चल कर उसने निज भव्यत्व जगाया ॥

परमज्योति महावीरश्री को केवलज्ञान की प्राप्ति
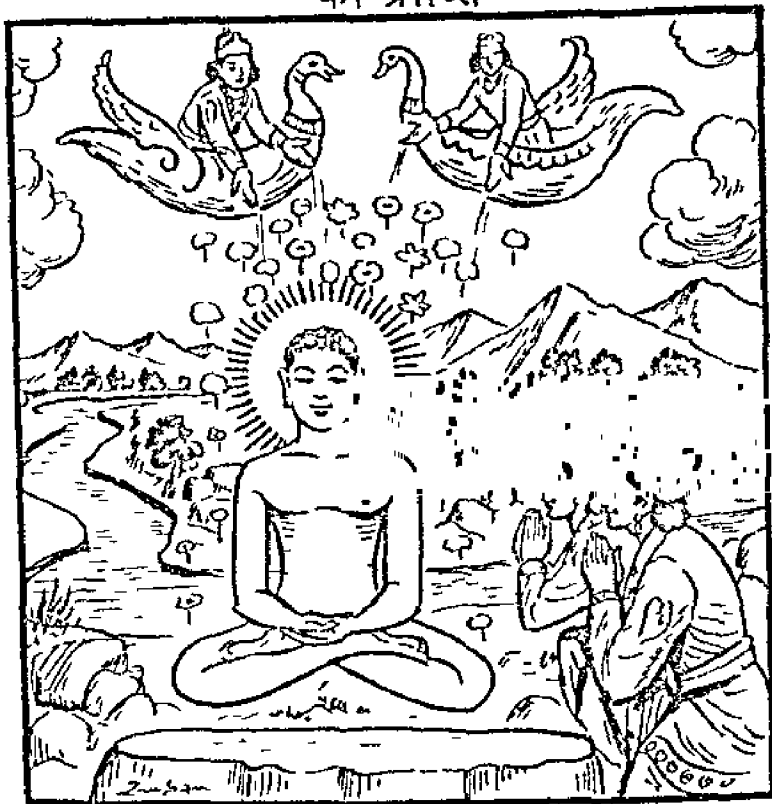
प्रकृति त्रेसठ कर्म घातिया किये नष्ट अरिहत हुये।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी वे केवलि भगवत हुये॥
ऋजुकूला सरिता के तट पर महावीर सर्वज्ञ बने।
बैसाखी शुक्ला दसमी को देवोत्सव भी हुये घने॥

सर्वज्ञ तीर्थंकर भ० महावीर की धर्म सभा
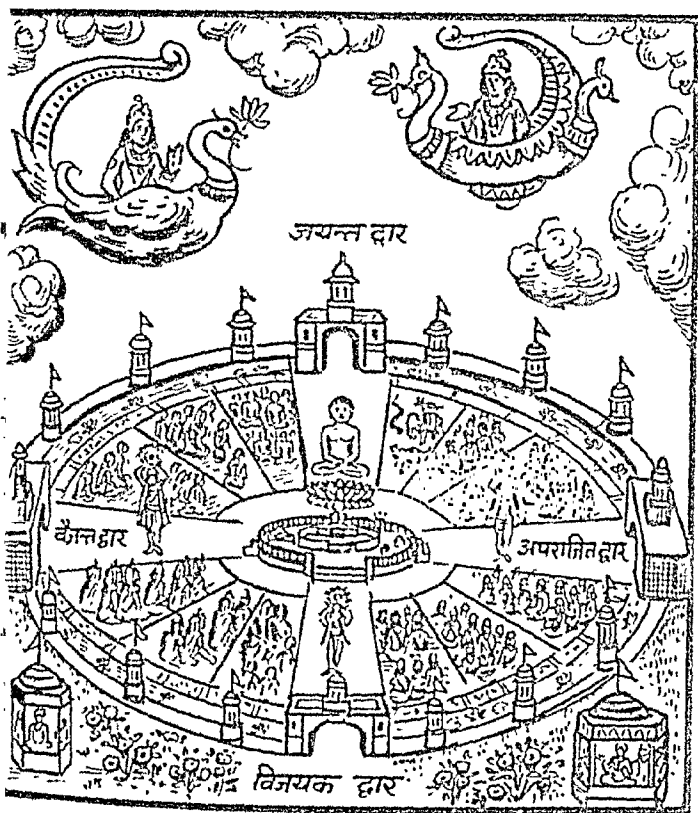
भक्तामर द्वारा रचित सभा-मंडप वैभव युत समवशरण ।
त्रय गोलाकार प्रकोष्ट सहित विस्तृत सर्वोदय का कारण ॥
मानाङ्गण में चौपथ चौदिशि जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खड़े ।
उनके आगे सरवर सुंदर पुनि प्रथम कोट में रतन जड़े ॥

विराट् धर्म सभा विवरण

(१)

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है द्वारों पर भवनों के किरीट॥

(२)

पुनि कल्प वृक्ष वन में मुनि सुर के बने हुए हैं सभा भवन।
है मणिमय कोट तृतीय रचा द्वारो पर कल्पों के सुर-गण॥

(३)

पुनि लता भवन स्तूप आदि श्री मंडप क्रमश तने हुए।
है केन्द्र स्थल में गंधकुटी चौदिशा कक्ष हैं बने हुए॥

(४)

इन बारह कक्षों मे क्रमश मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ।
ज्योतिष व्यन्तर भवनत्रिक की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ॥

(५)

फिर देव भवन व्यन्तर ज्योतिष अरु कल्प वासि नर पशु के हैं।
ये सभी सभ्य श्रोता बनकर सन्मति वाणी को सुनते हैं॥

(६)

उस गंधकुटी कमलाशन पर हैं अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान।
हैं समवशरण के जीव सभी दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान॥

इन्द्र की सूझ-बूझ

(१)

सर्वज्ञ केवली हुए वीर फिर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी।
छियासठ दिन यद्यपि बीत गये फिर भी मौनी हैं वीरश्री॥

(२)

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र इसका रहस्य जब जान चुका।
तब वृद्ध विप्र का स्वाँग बना गुरु कुलाचार्य के निकट रुका॥

(३)

जो पंच शतक निज शिष्यों को वेदान्त पढ़ाया करता था।
निज विद्या प्रतिभा का मिथ्या बस दंभ सदा ही भरता था॥

(४)

उस युग ने लोहा माना था उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का।
था याज्ञिक क्रिया कांड वेत्ता ज्ञाता था नाना अर्थों का॥

(५)

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय पर यदि उसमें सम्यकता है।
तो वन्दनीय वह देवों से वरना वह केवल मिथ्या है॥

(६)

था इन्द्रभूति गौतम बहुश्रुत आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था।
पर गणधर होने योग्य पात्र बस एक मात्र वह द्विज ही था॥

(७)

जिनवर वाणी जो झेल सके उस युग का ऐसा योग्य पात्र।
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा में था इन्द्रभूति ही एक मात्र॥

(८)

इसलिये वृद्ध का स्वाँग बना वह इन्द्र विप्र को ले आया।
उस समवशरण की ओर जहाँ था मानथंभ उन्नत काया॥

मानस्तम्भ दर्शन और अहंकारी इन्द्रभूति गौतम का दर्प दलन
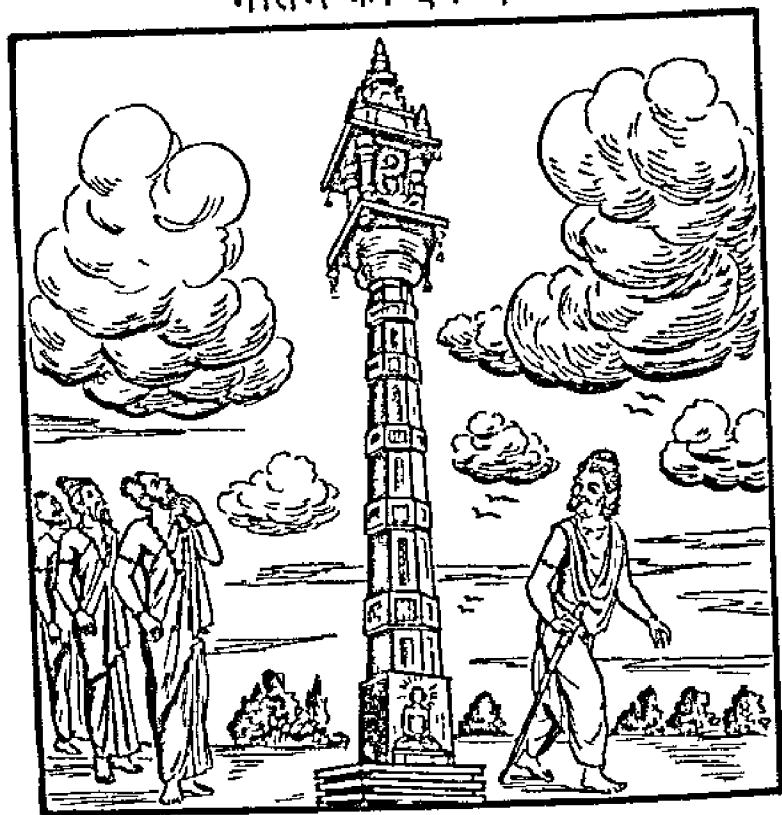
फिर क्या था गौतम ज्ञानी का मिथ्या मद सारा चूर हुआ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था मिथ्यात्व अंधेरा दूर हुआ॥
सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ सन्मति का गणधर बन पहला।
श्रुत द्वादशांग में भाव गूंथ जिनवाणी अमृत रहा-पिला॥

वीर हिमाचल ते निकसी गुरु गौतम के
मुख कुंड ढरी है
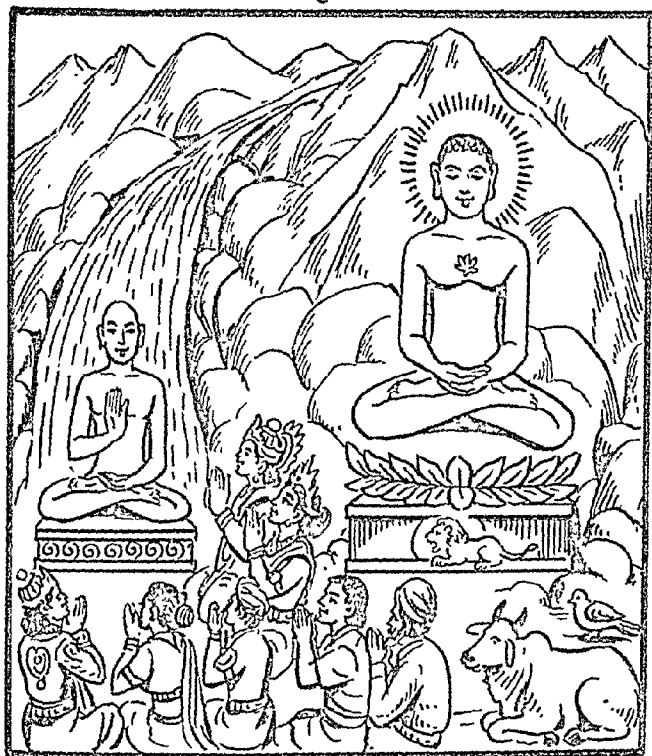
जिस दिवस दिव्य ध्वनि खिरी प्रथम वह सावन कृष्णा थी पावन।
तिथि महावीर के शासन की प्रतिपदा माँगलिक मन-भावन।।
विपुलाचल से दिया गया जो प्रथम देशना का संदेश।
गौतम गणधर ने गूंथा है उसको ही सामान्य-विशेष।

महावीर भगवान के विश्व व्यापी अमर सन्देश
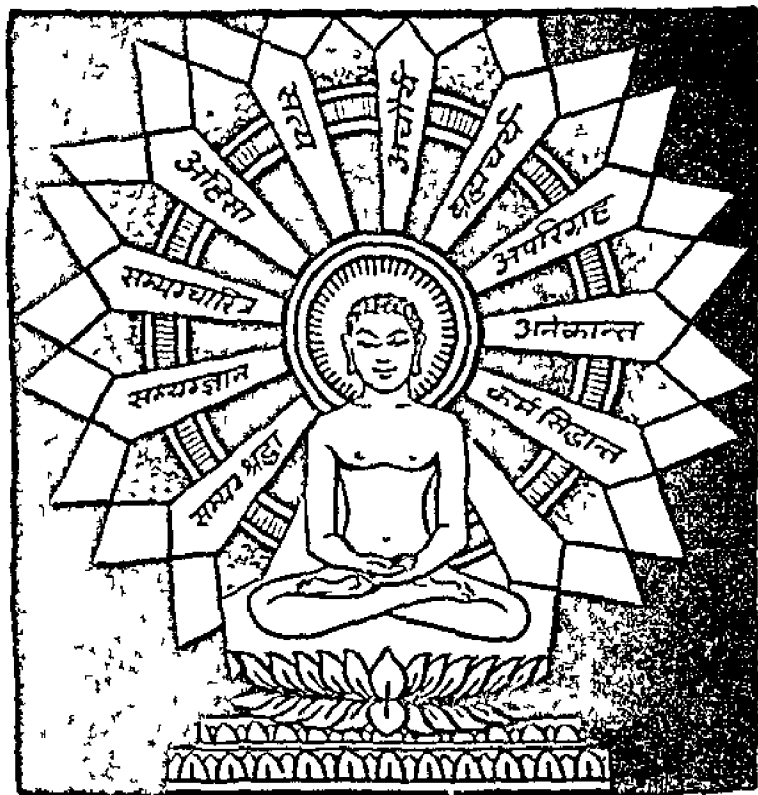
वीतरागता परम अहिंसा स्याद्वाद सर्वोदय ही ।
कर्मवाद निसर्गवाद है द्वादशांग वाणी मय ही ।।
पर द्रव्यों से भिन्न सर्वथा ज्ञान ज्योति हर चेतन है ।
स्वाभाविकता वीतरागता वैभाविकता बंधन है ।।

अहिंसा की छत्रच्छाया का दृश्य
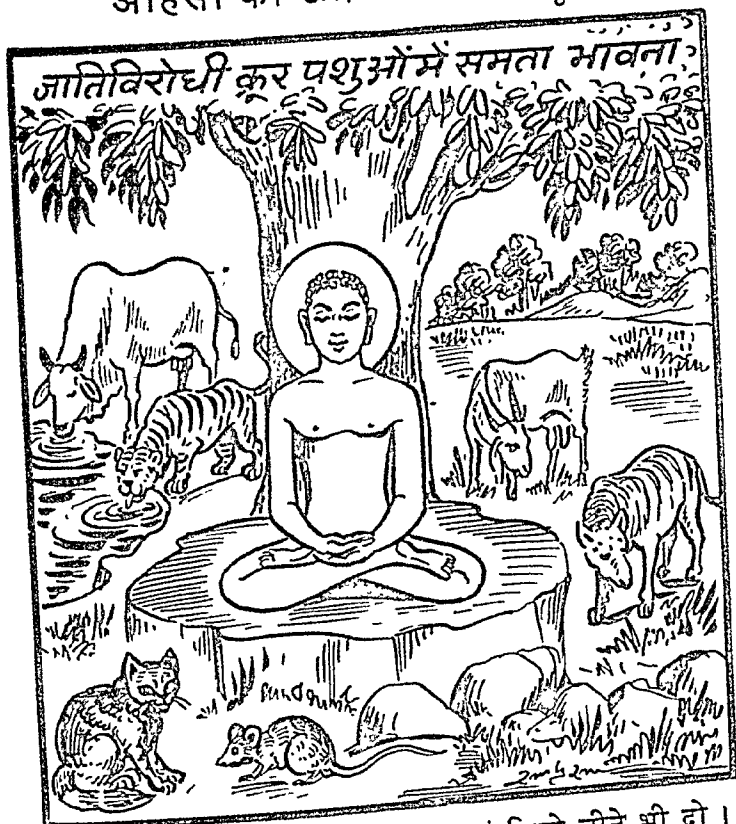
जीने का अधिकार सभी को स्वयं जियो जीने भी दो ।
शेर गाय को एक घाट पर करुणा जल पीने भी दो ॥
आत्मा को प्रतिकूल लगे जो औरों को भी वह प्रतिकूल ।
नहीं चुभाओ अतः किसी को कभी दुःख हिंसा के शूल ॥

श्री वीर प्रभु की चरण-रज से

प्रभावित तत्कालीन भारत

महारानी चेलना द्वारा यशोधर मुनि का उपसर्ग निवारण

मुनि तन को हा ! छेद-छेद कर चींटी रुधिर पान करती थी।
सम्यक्त्व शिरोमणि राज्ञि चेलना देख-देख आहें भरती थी॥
किन्तु अंततः कीड़ी दल को बड़े यत्न से शीघ्र उतारा।
भौंचक्का सा रहा देखता श्रेणिक मुनि का गौरव सारा॥

ऐतिहासिक सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक द्वारा धर्म परिवर्तन

राजा श्रेणिक बौद्ध धर्म तज क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाते।
वर्द्धमान के पाद-मूल मे भावी तीर्थंकर पद पाते॥
साठ हजार किये प्रभुवर से प्रश्न उन्होंने समवशरण मे।
फल स्वरूप अनुयायी बन कर भू-मंडल ही गिरा चरण मे॥

वीर-दर्शन-पिपासु मेंढ़क का उद्धार

एक कूप मंडूक भक्ति वश कमल पखुडी लेकर आया।
श्रेणिक के गजराज पैर से कुचल शीघ्र ही सुर-पद पाया॥
भाव भक्ति का ही महत्व है द्रव्य भक्ति पीछे चलती है।
व्यवहारों की माया सचमुच निश्चय छाया में पलती है॥

दस्युराज अर्जुन माली द्वारा प्रपीडित नागरिक

छह पुरुष एक महिला का वध करता था वह अर्जुनमाली ।
दस्युराज था महाक्रूरतम राजगृह नगरी हुई खाली ॥
उपादान था भव्य दस्यु का अत निमित्त मिला कुछ ऐसा ।
हिंसक कर भी वीर तेज मे उठा रहा जैसे का तैसा ॥

दस्युराज अर्जुन का आत्म समर्पण

जव वीर-वदना हेतु सुदर्शन सेठ उसी पथ से आये ।
अर्जुनमाली उन पर झपटा क्षुधित सिह सा तब मुँहवाये ।।
पर आतमतेज से ठिठक गया चरणों में मस्तक झुका दिया ।
तव सेठ सुदर्शन ने उसको अपनी वाहों में उठा लिया ।।

पतित पालकी अर्जुन, महावीरश्री के पाद पद्मो मे

प्रस्तुत प्रसग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित ।
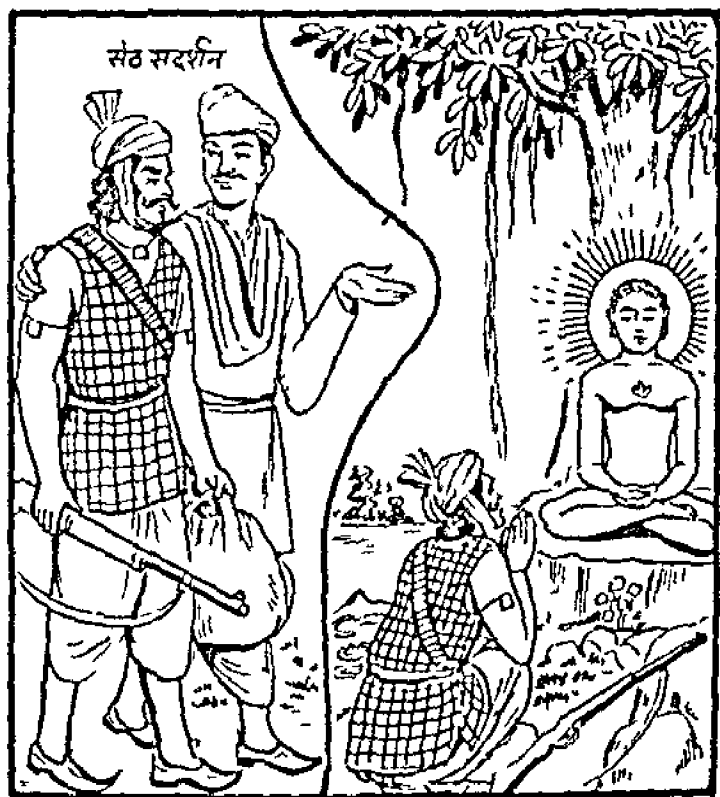
ले चल उसे वे वहाँ जहाँ पापी मे पापी तिरते थे ।
अधमो मे अधमो के भी दिन जिस समवशरण मे फिरते थे ॥
हो गया हृदय का परिवर्तन सुनकर उपदेश अहिंसा का ।
धारक भी वह होगया स्वयं तत्काल दिगम्बर मुद्रा का ॥

महावीर श्री का महापरिनिर्वाण
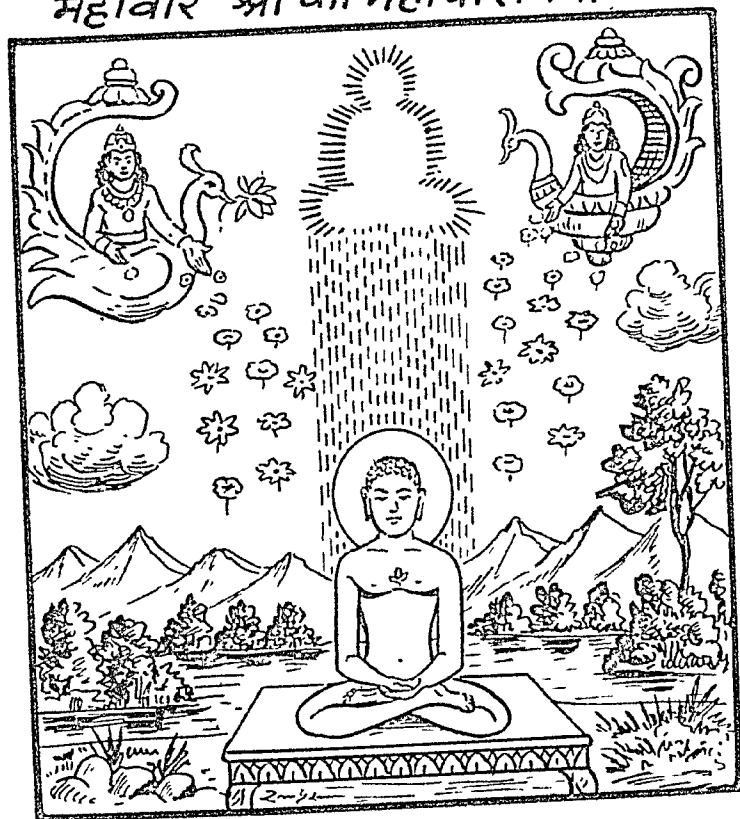
कार्तिक कृष्ण अमावस की थी सुप्रभात वह मगल वेला ।
सिद्धालय में हुआ विराजित सन्मति प्रभु का जीव अकेला ॥
अष्ट कर्म कर नष्ट सिद्ध पद पा जाते हैं त्रिशला नन्दन ।
ज्ञान शरीरी सिद्ध प्रभू के चरण-कमल में शत शत वंदन ॥

अग्निकुमार देवो के मुकुटो की अग्नि द्वार अन्तिम सस्कार

अग्निकुमार देव नत मुकुटो द्वारा प्रकटित हुई कृशानु।
उसके द्वारा दग्ध हुए उनके कर्पूरी तन परमानु॥
रत्न-वृष्टि करके देवों ने पावापुर जगमगा दिया।
कार्तिक कृष्ण अमावस निशि का मोह महातम भगा दिया॥